निवेदन

भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित पूर्ण द्रव्यानुयोग की बात रहने दीजिये। इस वर्तमान काल में उपलब्ध द्रव्यानुयोग सम्बन्धी शास्त्र भी अत्यन्त विस्तृत हैं। और फिर आजकल की बोल-चाल की भाषा में न होने से सर्वसाधारण उनका उपयोग नहीं कर सकते। इस दशा में द्रव्यानुयोग का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सरल उपाय थोकड़ा है। थोकड़ा शास्त्र ज्ञान प्राप्त करने की कुंजी (Key) है। इससे सभी जिज्ञासु सरलता पूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसी विचार से "नय प्रमाण का थोकड़ा" प्रकाशित किया गया है।

इस थोकड़े की भाषा विशुद्ध हिन्दी नहीं है। उस की शुद्धता पर ध्यान भी नहीं दिया गया है। कारण यह कि जिन लोगों ने प्राकृत के शब्दों से इसे याद किया है, उनके लिए शुद्ध हिन्दी अनुकूल नहीं पड़ती। उनकी जबान पर वैसा ही बैठा होता है। अतः इसकी भाषा पर ध्यान न देकर भावों की ही ओर ध्यान देने की कृपा करें।

इस थोकड़े के शुद्ध करने में लींबड़ी सम्प्रदाय के श्रीमान् १००८ श्री शतावधानी मुनिश्री रत्नचन्द्रजी महाराज श्रीमान् १००८ श्री उपाध्याय आत्मारामजी महाराज और परम-प्रतापी श्रीमान् १००८ पूज्यश्री हुकमीचन्द्रजी महाराज की सम्प्रदाय के आचार्य १००८ श्री पूज्य जवाहिरलालजी महाराज के सुशिष्य १००७ श्री पंडितरत्न घासीलालजी महाराज से बहुत सहायता मिली है। अतः इन सब महानुभावों का आभार मानते हैं।

आशा है पाठकगण इससे लाभ उठाकर कृतार्थ करेंगे।—

निवेदक—

भैरोंदान जेठमल सेठिया

बीकानेर
२१-१-२८ ई.

विषयसूची

सात नयों का थोकड़ा

वीरं प्रणम्य सर्वज्ञं, गौतमं गणिनं तथा ।
नयानां क्रियते व्याख्या, स्वात्मानुग्रहहेतवे ॥१॥

श्रीअनुयोगद्वार सूत्र में सात नयों का अधिकार चला है वह इकीस द्वार कर के अनेक स्थल में वर्णित है उस अधिकार को कहते हैं—

२१ द्वारों के नाम.

१ नयद्वार, २ निक्षेपद्वार, ३ द्रव्यगुणपर्याय, ४ द्रव्यक्षेत्रकालभाव, ५ द्रव्यभाव, ६ कारणकार्य, ७ निश्चयव्यवहार, ८ उपादान तथा निमित्तकारण, ९ प्रमाण ४, १० गुणगुणी, ११ सामान्यविशेष, १२ ज्ञेयज्ञानज्ञानी, १३ उत्पादव्ययध्रुव, १४ आधाराधेय, १५ आविर्भावतिरोभाव, १६ मुख्यता और

गौणता, १७ उत्सर्गापवाद, १८ आत्मा ३, १९ ध्यान ४, २० अनुयोग ४, २१ जागरणा ३।

प्रथम नयद्वार के अन्तर्द्वार (भेद) ११.

१ नामद्वार, २ शब्दार्थद्वार, ३ स्वरूपद्वार, ४ लक्षणद्वार, ५ भेदद्वार, ६ दृष्टान्तद्वार, ७ नयावतारद्वार, ८ द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकद्वार, ९ सप्तभङ्गीद्वार, १० सात नयों के ७०० भेद द्वार, ११ निश्चयव्यवहारद्वार।

अन्तर्द्वारों में—१ नाम द्वार.

सात मूलनयों के नाम कहते हैं— १ नैगमनय, २ संग्रहनय, ३ व्यवहारनय, ४ ऋजुसूत्रनय, ५ शब्दनय, ६ समभिरूढनय, ७ एवंभूतनय।

२ शब्दार्थद्वार.

प्रथम नय शब्द का अर्थ लिखते हैं—जो वस्तु के संपूर्ण अंश का ज्ञान करानेवाला हो उस को प्रमाण कहते हैं, अथवा जो समस्त वस्तु को परिच्छिन्न याने भिन्न २ करे संशय विमोह और विभ्रम से रहित वस्तु

की जैसी की तैसी स्थापना करे वही प्रमाण कहा जाता है, उस प्रमाण के दो भेद हैं—सविकल्प और निर्विकल्प। जो इन्द्रियद्वारा प्रवर्त्तने वाले मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ज्ञान स्वरूप हो वह सविकल्प है और जो इन्द्रियातीत केवलज्ञान रूप हो वह निर्विकल्प है। इस प्रकार प्रमाण के अर्थ जानना। और जो इसी प्रमाण के द्वारा गृहीत (ग्रहण की हुई) वस्तु के एक अंश का ज्ञान कराने वाला हो उस को नय कहते हैं। अथवा ज्ञाता (जानने वाले) का जो अभिप्राय है वही नय कहा जाता है और नाना स्वभाव से लेकर वस्तु को एक स्वभाव में स्थापित करे उसको तथा वस्तु के एक देश को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं।

७ नयों के लक्षण—

जो विकल्प से संयुक्त हो वह नैगमनय १। जो अभेदरूप से वस्तु को ग्रहण करे वह संग्रहनय २। जो

१— इसके अन्य स्थल में ऐसे भी लक्षण कहे हैं, जैसे—एक वचन में एक अध्यवसाय उपयोग में ग्रहण आवे उस का सामान्य रूप पने सर्व वस्तु को ग्रहण करे वह संग्रह नय, अथवा सब भेदों को सामान्य पने ग्रहण करे वह संग्रहनय, अथवा 'संगृह्णाते इति संग्रहः' जो समुदाय अर्थ ग्रहण करे वह संग्रहनय कहा जाता है।

इस (संग्रह) नय से जिस जिस अर्थ को ग्रहण किये उन्हीं अर्थों के भेद करके वस्तु का फैलाव करे वह व्यवहार नय ३। जो सरल भांति सूचना करे वह ऋजुसूत्रनय ४। जो शब्द व्याकरण से प्रकृतिप्रत्यय द्वारा सिद्ध हो वह शब्दनय ५। जो शब्द में भेद होते हुए भी अर्थ का भेद नहीं हो जैसे– शक्र इन्द्र पुरन्दर आदि, वह समभिरूढ़ नय ६। और जो क्रिया के प्रधान पने से हो वह एवंभूत नय ७ कहा जाता है।

३ स्वरूपद्वार.

(नैगम नय)

(१)

नैगमनय वाला पदार्थ को सामान्य, विशेष तथा उभयात्मक मानता है, तीन काल की बात मानता है और निक्षेपा चार मानता है। नैगम नय का अर्थ यह है कि– नहीं है एक गम (विकल्प) जिस के अर्थात् अनेक मान अनुमान और प्रमाण करके वस्तु को माने वही नैगम कहा जाता है।

(संग्रह नय)
(२)

संग्रह नय वाला पदार्थ को सामान्य मानता है विशेष नहीं, तीन काल की बात मानता है, निक्षेपा चार मानता है, संग्रह संग्रह में वस्तु को ग्रहण करे, इस पर दातून का दृष्टान्त, जैसे- किसी साहूकार ने अपने अनुचर (दास) को कहा कि दातून लाओ, तबवह दास 'दातून' ऐसा शब्द सुनकर दातून मसी (दन्त-मञ्जन) कूंची जिभी झारी काच कांगसा रूमाल पाग पोशाक अलंकार, इत्यादि दातून की सब सामग्री ले आया। इस प्रकार संग्रह नय वाला एक शब्द में अनेक वस्तु को ग्रहण करे जैसे वन को वन कहे परन्तु वन में वस्तुएँ अनेक हैं।

(व्यवहार नय)
(३)

व्यवहार नय वाला पदार्थ को विशेषसहित सामान्य मानता है, तीन काल की बात मानता है, निक्षेपा चार मानता है, तथा जो वस्तु का विवेचन करे अर्थात् भेद करे उस को व्यवहार कहते हैं, जैसे--जीव के दो

भेद--सिद्ध और संसारी, सिद्ध के दो भेद-अनन्तर सिद्ध और परम्परसिद्ध, संसारी जीव के भी दो भेद-सयोगी(१३ वें गुणठाणवाले)और अयोगी(१४ वें गुणठाणवाले),सयोगी के दो भेद-छद्मस्थ और केवली(१३वें गुणठाणवाले),छद्मस्थ के दो भेद--सकषायी छद्मस्थ और अकषायी छद्मस्थ, अकषायी छद्मस्थ के दो भेद-उपशान्तकषायी छद्मस्थ (११ वें गुणठाणवाले) और क्षीणकषायी छद्मस्थ(१२ वें गुणठाणवाले), सकषायी छद्मस्थ के दो भेद-सूक्ष्मसम्पराय(१० वें गुणठाण)वाले और बादरसंपराय वाले, बादरसम्पराय वाले के दो भेद- प्रमादी और अप्रमादी (७ वें ८ वें ९ वें गुणठाणवाले), प्रमादी के दो भेद- सविरति और अविरति, सविरति के दो भेद- सर्वविरति साधु (छट्ठे गुणठाणवाले) और देशविरति श्रावक (५ वें गुणठाणवाले), अविरति के दो भेद- अविरतिसम्यग्दृष्टि(चौथे गुणठाणवाले) और अविरति मिथ्यादृष्टि (पहलेगुणठाणवाले) दूसरे तीसरे गुणठाणवाले को भी मिथ्यात्व की क्रिया लगती है इसलिए वे भी मिथ्यादृष्टि के शामिल गिने गये हैं । मिथ्यादृष्टि के दो भेद-- भव्य (मुक्तिगमनयोग्य) और अभव्य (मुक्तिगमन के अयोग्य)

भव्य के दो भेद–ग्रन्थि भेदी (ग्रन्थिरहित) और अग्रन्थि-भेदी (ग्रन्थिसहित)। इसी रीति से पुद्गल के भी दो भेद मानते हैं–परमाणु और स्कन्ध, स्कन्ध के दो भेद–जीवसहित और जीवरहित, जीवसहित स्कन्ध के दो भेद–सूक्ष्म स्कन्ध और बादर स्कन्ध। इत्यादि भिन्न २ विवेचन करे उस को व्यवहारनय कहते हैं।

(ऋजुसूत्र नय)

(४)

ऋजुसूत्र नय वाला पदार्थ को सामान्य नहीं मानता है विशेष मानता है, निक्षेपा चार मानता है, वर्त्तमान काल को मुख्य कर के वस्तु मानता है, जैसे किसी ने कहा कि सौवर्ष पहले सुवर्ण की वृष्टि हुई थी तो इस नय वाला कहता है कि निरर्थक, तथा सौवर्ष पीछे सुवर्ण की वृष्टि होगी, तो भी निरर्थक। ऐसे ऋजुसूत्र नय वाला वर्त्तमान काल को मुख्य कर के वस्तु मानता है, जिस पर साहूकार के बेटे की बहू का दृष्टान्त– जैसे कोई साहूकार अपने मकान की पौषध-शाला में सामायिक करके बैठा था उस वखत किसी दूसरे पुरुष ने आकर उस के बेटे की बहू को पूछने लगा कि तुम्हारे ससराजी कहां गये हैं? तो वह बेटे की

वह बोलती है कि मेरे ससुरजी पंसारी बाजार में सूंठ मिरच विगेरे खरीदने को गये हैं, तब उस पुरुष ने पंसारी बाजार में जाकर सेठजी की तलास की मगर वहां नहीं पाये तो पीछा आकर फिर पूछता है कि बाई! वहां तो सेठजी नहीं मिले सच बताइये कि सेठजी कहां गये हैं? तब वह बोलती है कि मेरे ससुरजी मोची के यहां जूते खरीदने को गये हैं, तब उस पुरुष ने मोचियों के बाजार में जाकर तलास की तो वहां भी सेठजी नहीं पाये तब पीछा यहां आया तो इतने में सेठजी की सामायिक पूरी हो गई थी, सेठजी सामायिक पारकर उस पुरुष से मिले और पास पीछा कर उस को सीख दी और बेटे की बहू से कहने लगे कि बहू! तू जानती थी के ससुरजी सामायिक लेकर बैठे हैं तो फिर नाहक इतना झूंठ क्यों बोली? तब उस बहू ने ऐसा उत्तर दिया कि आप का मन उस वखत पंसारी के यहां तथा मोची के यहां गया था इसलिए मैंने उस पुरुष से ऐसा कहा। इस प्रकार ऋजुसूत्र नय वाला वर्तमान काल को मुख्य रख कर वस्तु को मानता है।

(शब्दनय)
(५)

शब्द नय वाला पदार्थ को सामान्य नहीं मानता है विशेष मानता है, वर्त्तमान काल की बात मानता है, निक्षेप १ भाव मानता है, सदृश शब्दों का एक ही अर्थ मानता है, लिङ्ग और शब्द में भेद नहीं मानता है जैसे शक्र, पुरन्दर, शचीपति, देवेन्द्र, सब को एक मानता है।

(समभिरूढ नय)
(६)

समभिरूढ नय वाला पदार्थ को सामान्य नहीं मानता है विशेष मानता है, वर्त्तमान काल की बात मानता है निक्षेप १ भाव मानता है, सदृश शब्दों का भिन्न भिन्न अर्थ मानता है, लिङ्ग और शब्द में भेद मानता है जैसे शक्रेन्द्र– जब शक्रासन पर बैठा हुआ अपनी शक्ति द्वारा देवताओं को आज्ञा मनाता है उस वखत वह शक्रेन्द्र है। पुरन्दर–जब वज्र हाथ में लेकर वैरी देवताओं के पुरको विदारे (नाश करे) उस वखत वह पुरन्दर है। शचीपति– जब इन्द्राणियों की

सभा में बैठाहुआ रंग राग नाटक चेटक देखे इन्द्रियजन्य सुखों का अनुभव करे उस वख्त वह शचीपति है। देवेन्द्र-जब देवताओं की सभा में बैठा हुआ न्याय (इन्साफ़) करे उस समय वह देवेन्द्र है। ऐसे समभिरूढनयवाला शब्द पर आरूढ होकर सदृश शब्दों का भिन्न भिन्न अर्थ ग्रहण करता है। अथवा किञ्चिद् ऊन वस्तु को भी संपूर्ण वस्तु मानता है, जैसे-तेरहवें चौदहवें गुणठाणवाले केवली भगवान् को भी सिद्ध मानता है।

(एवंभूत नय)

(७)

एवंभूतनयवाला पदार्थ को सामान्य नहीं मानता है विशेष मानता है, वर्त्तमान काल की बात मानता है निक्षेप १ भाव मानता है, सदृश शब्दों का उपयोगसहित भिन्न भिन्न अर्थ ग्रहण करता है, जैसे शक्रेन्द्र-शक्र आसन पर बैठाहुआ अपनी शक्ति से उपयोगसहित देवताओं को आज्ञा मनावे उस वख्त वह शक्रेन्द्र है शेष पूर्ववत्। इस एवंभूत नय में उपयोगसहित क्रिया की मुख्यता है। इस नयवाला जो वस्तु अपने गुणों में संपूर्ण हो और अपने गुणों की यथावत्

क्रिया करे उसी को पूर्ण वस्तु कहता है, जैसे पानी से भरा हुआ स्त्री के शिरपर जलाहरणरूप चेष्टा करता हुआ हो उसी समय उस को घट (घडा) कहता है किन्तु घर के कोने में पड़े हुए घट को घट नहीं मानता है, ऐसे ही जब जीव सब कर्मों का क्षय कर के मुक्तिक्षेत्र में विराजमान हो तब ही उस को सिद्ध कहता है।

४ लक्षणद्वार.

णेगेहिं माणेहिं मिणइत्ति णेगमस्स य निरुत्ती।
सेसाणंपि नयाणं, लक्खणमिणमो सुणह वोच्छं ॥१॥
संगहिअपिंडिअत्थं, संगहवयणं समासओ विंति।
वच्चइ विणिच्छियत्थं, ववहारो सव्वदव्वेसु ॥ २॥
पच्चुप्पन्नग्गाही, उज्जुसुओ णयविही मुणेयव्वो।
इच्छइ विसेसियतरं, पच्चुप्पणं णओ सद्दो ॥३॥
वत्थूओ संकमणं, होइ अवत्थू नए समभिरूढे।
वंजण-अत्थ-तदुभयं, एवंभूओ विसेसेइ ॥४॥
(अनुयोगद्वारसूत्र)

१ नैगम नय सामान्य विशेष तथा उभय प्रधान वस्तु को मानता है। २ संग्रहनय सामान्य प्रधान वस्तु को मानता है यथा सत् जगत्। ३ व्यवहारनय विशेष

प्रधान लोकरूढ वस्तु को मानता है। ४ ऋजुसूत्र नय वर्तमान कालविषयक वस्तु को मानता है, अतीत अनागत काल विषयक वस्तु को नहीं मानता है। ५ शब्दनय काल लिङ्ग और वचन वगैरह के भेद से वस्तु को भिन्न भिन्न मानता है, अभूत् भवति भविष्यति. तटः तटी तटं. देवः देवौ देवाः, इन के लिङ्ग तथा वचन भेद होने से वस्तु को भी भिन्न२ प्रकार से मानता है। ६ समभिरूढ नय व्युत्पत्ति के भेद से वस्तु को भिन्न भिन्न मानता है, यथा इन्दनात् इन्द्रः, शकनात् शक्रः, पुरदारणात् पुरन्दरः, इस प्रकार यह नय इन्द्र शक्र पुरन्दर. इन शब्दों को व्युत्पत्ति की प्रधानता से भिन्न मानता है। ७ एवंभूत नय क्रियाविशिष्ट वस्तु को ही वस्तु तरीके मानता है यथा इन्दनक्रिया में परिणत होने से इन्द्र. पुरदारण में प्रवृत्त होने से पुरन्दर मानता है। क्रियारहित काल में इन्द्रादि शब्दों को इन्द्र शक्र पुरन्दर तरीके नहीं मानता है। समभिरूढ नय में क्रिया करो अथवा न करो परन्तु व्युत्पत्ति युक्त होना चाहिये, और एवंभूत नय में क्रिया मुख्य होनी चाहिये, इन दोनों में केवल इतना ही भेद है। इन नयों के लक्षणों का विशेष विवरण अन्य स्थल से जानलेना।

५ भेद द्वार

(नैगमभेदाः)

नैगमनय के तीन भेद हैं– अंश, आरोप और संकल्प, और विशेषावश्यक में चौथा उपचरित भेद भी कहा है।

अंश नैगम के दो भेद हैं– भिन्नांश और अभिन्नांश, इनमें से स्कन्धादिक के जुदे अंश को भिन्नांश कहते हैं और अविभाग गुण को अभिन्नांश कहते हैं।

आरोप नैगम के चार भेद हैं– द्रव्यारोप, गुणारोप, कालारोप और कारणारोप। १ द्रव्यारोप– वास्तव में द्रव्य तो न हो परन्तु उसमें द्रव्य का आरोप करना, जैसे काल को द्रव्य कहना। २ गुणारोप– द्रव्य के विषय में गुण का आरोप करना, जैसे 'ज्ञान' यह आत्मा का गुण है परन्तु जो ज्ञान है वही आत्मा है, इस तरह ज्ञान को ही आत्मा कहना। ३ कालारोप— इसके भी दो भेद हैं– भूत और भविष्यत्, भूत— जैसे दीपमालिका के दिन कहे कि आज श्री महावीरस्वामी का निर्वाण है, यह वर्त्तमान काल में भूत(अतीत)काल का आरोप किया, भविष्यत्–जैसे आज श्री पद्मनाभ प्रभु का जन्म कल्याणक है, यह वर्त्तमान काल में भविष्यत्

(अनागत)काल का आरोप किया, जैसे वर्त्तमान काल के साथ दो भेद कहे हैं इसी तरह भूत और भविष्यत् काल के साथ भी दो दो भेद होते हैं, एवं कालारोप के ६ भेद अन्यस्थल से जानलेवें। ४ कारणारोप– कारण चार प्रकार का है– १उपादानकारण, २असाधारण कारण, ३निमित्त कारण, और ४ अपेक्षाकारण। इन में जो निमित्त-कारण है उस निमित्त में जो बाह्य किया अनुष्ठान द्रव्य साधन सापेक्ष अथवा देव और गुरु ये सब धर्म के निमित्त कारण हैं सो इन को ही धर्म कहना, जैसे श्री वीतराग सर्वज्ञ देव परमात्मा भव्य जीवों को आत्म-स्वरूप दिखाने के लिए निमित्त कारण हैं सो उस निमित्त कारण को ही भक्तिवश होकर भव्यजीव कहते हैं कि हे प्रभो! तूं हमारे को तार तूं ही तरणतारण है, ऐसा जो कहना सो निमित्त कारण में उपादान कारण का आरोप करना है। वैसे ही अपेक्षा कारण में निमित्त कारण का आरोप करना, जैसे शुद्ध आहारादि को ज्ञान का निमित्त कारण कहना। असाधारण कारण में उपादान कारण का आरोप करना, जैसे ज्ञान का क्षयोपशम अथवा क्षय असाधारण कारण है उसी को ज्ञानस्वरूप आत्मा कहना अर्थात् प्रशस्त क्षयोपशमवाले को प्रशस्त ज्ञान वाला कहना।

अपेक्षा कारण में उपादान कारण का आरोप करना जैसे मुनि के पात्रादि उपकरण को चारित्र (संयम) का आधार कहना, इसी का नाम कारणारोप है।

संकल्प नैगम के दो भेद होते हैं– स्वयंपरिणामरूप और कार्यरूप। स्वयंपरिणामरूप - जो वीर्य चेतना का संकल्प होना, इस जगह जुदा २ क्षय और उपशम भाव लेना है। दूसरा कार्यरूप– जैसा२ कार्य हो वैसा २ उपयोगहो,जैसे मिट्टी का करवा बना उस समय करवे का उपयोग और ढकनी बनी उस समय ढकनी का उपयोग।

(संग्रह नय)

संग्रह नय के दो भेद हैं–सामान्यसंग्रह और विशेषसंग्रह। सामान्यसंग्रह के भी दो भेद हैं–मूलसामान्यसंग्रह और उत्तरसामान्यसंग्रह। मूलसामान्यसंग्रह के अस्तित्व १ वस्तुत्व २ द्रव्यत्व ३ प्रमेयत्व ४ प्रदेशत्व ५ और अगुरुलघुत्व ६, ये छह भेद हैं और उत्तरसामान्यसंग्रह के दो भेद हैं–जातिसामान्य और समुदायसामान्य। जातिसामान्य–जो एक जातिमात्र को ग्रहण करे। समुदायसामान्य–जो समुदाय अर्थात्

समूह याने सब को ग्रहण करे । यह उत्तरसामान्य चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन को ग्रहण करता है, और पूर्वोक्त जो मूलसामान्य है वह अवधि दर्शन तथा केवल दर्शन को ग्रहण करता है । अथवा इस सामान्य विशेष का ऐसा भी अर्थ होता है कि द्रव्य ऐसा नाम लेने से सर्व द्रव्यों का संग्रह हो गया इसका नाम सामान्य संग्रह है, और केवल एक जीवद्रव्य कहा तो सर्व जीवद्रव्य का संग्रह हो गया परन्तु अजीव सब टल गये, इस का नाम विशेष संग्रह है ।

(व्यवहार नय)

व्यवहार नय के दो भेद हैं—शुद्ध व्यवहार और अशुद्ध व्यवहार । शुद्ध व्यवहार के दो भेद हैं—वस्तुगततत्त्वग्रहणव्यवहार और वस्तुगततत्त्वज्ञानव्यवहार । १ वस्तुगततत्त्वग्रहणव्यवहार—जो आत्मतत्त्व अर्थात् अपने निज स्वरूप को ग्रहण करे और परवस्तुगत तत्त्व को छोड़े उस का नाम वस्तुगततत्त्वग्रहण व्यवहार है । दूसरा जो भेद वस्तुगततत्त्वज्ञानव्यवहार है उसके भी दो भेद हैं—१ स्ववस्तुगततत्त्वज्ञानव्यवहार और २ परवस्तुगततत्त्वज्ञान-

व्यवहार। पहले भेद का अर्थ यह है कि– स्व-याने अपनी आत्मा का जो तत्त्व याने ज्ञान, दर्शन चारित्र वीर्य आदि अनन्तगुण आनन्दमय है, मेरा कोई नहीं और मैं किसी का नहीं हूँ, ऐसा जो अपने स्वरूप को जानना उस का नाम स्ववस्तुगततत्त्व जानन व्यवहार है १। दूसरा भेद परवस्तुगततत्त्वजाननव्यवहार है उस के किसी अपेक्षा से तो एक ही भेद है और किसी अपेक्षा से चार अथवा पांच भेद भी हो सकते हैं, इन सब को एक साथ दिखाते हैं, जैसे धर्मास्तिकाय में चलन–सहाय आदि गुण (लक्षण) हैं और अधर्मास्तिकाय में स्थिर सहाय आदि गुण हैं, आकाश– में अवगाहनादि गुण हैं, पुद्गल में मिलन विखरन आदि गुण हैं और काल में नया पुराना वर्त्तना आदि हैं, इत्यादिक। इन सब परवस्तुगततत्त्व को जानना उस का नाम परवस्तुगततत्त्वजाननव्यवहार है। अन्य प्रकार से भी इस वस्तुगत व्यवहार के तीन भेद होते हैं सो भी दिखाते हैं– १ द्रव्यव्यवहार २ गुणव्यवहार और ३ स्वभावव्यवहार। द्रव्यव्यवहार उसे कहते हैं कि जगत् में जो द्रव्य (पदार्थ) हैं उन्हें यथार्थ जानें; इस द्रव्य व्यवहार के कहने से अन्य मत का निराकरण होता है। दूसरे गुणव्यवहार

को कहते हैं- जो गुण गुणी का समवाय सम्बन्ध है उस को यथार्थ जाने और गुण गुणी के परस्पर भेद और अभेद दोनों को माने, इस गुणव्यवहार से वेदान्त मत का निराकरण होता है। तीसरा स्वभावव्यवहार- द्रव्य में जो स्वभाव है उस को यथार्थ जाने इस स्वभावव्यवहार से नैयायिक मत का निराकरण होता है।

इसी शुद्धव्यवहार के अन्य प्रकार से भी दो भेद होते हैं - साधनव्यवहार और विवेचनव्यवहार, साधन व्यवहार उस को कहते हैं जो उत्सर्ग मार्ग से नीचे के गुणस्थान को छोड़ और ऊपर के गुणस्थान में श्रेणी आरोहणरूप करके समाधि में होकर आत्मरमण करे। विवेचनव्यवहार के दो भेद हैं- स्वविवेचनव्यवहार और परमहगण करावनरूप विवेचनव्यवहार। स्वविवेचन व्यवहार के दो भेद हैं -उत्सर्ग और अपवाद, उत्सर्ग-स्वविवेचनव्यवहार- निर्विकल्पसमाधिरूप है, और अपवादस्वविवेचनव्यवहार-अपवाद से विकल्प सहित शुक्लध्यान का प्रथम पाया है । परमहगणकरावनरूप विवेचन व्यवहार-यद्यपि ज्ञान दर्शन चारित्र आदि आत्मा से अभेदरूप होकर एक क्षेत्र में अर्थात् आत्मप्रदेश में रहते हैं परन्तु जिज्ञासु के समझाने के लिए ज्ञान दर्शन और चारित्र को जुदे कहकर आत्म-

बोध कराना, जैसे किसी को ज्ञान गुण लेकर ज्ञानी कहना, दर्शन से दर्शनी और चारित्र से चारित्री इत्यादि ।

अशुद्धव्यवहार के भी दो भेद हैं– १ संश्लेषित अशुद्ध व्यवहार और असंश्लेषित अशुद्धव्यवहार । संश्लेषित अशुद्ध व्यवहार उस को कहते हैं जो 'यह शरीर मेरा है और मैं शरीर का हूँ' ऐसा कहना। असंश्लेषित अशुद्ध व्यवहार उस को कहते हैं जो 'धनादि मेरा है' ऐसा कहना ।

इस अशुद्ध व्यवहार का अन्य प्रकार से भी भेद होते हैं सो इस प्रकार – इस के मुख्य दो भेद हैं–विवेचनरूप अशुद्ध व्यवहार और प्रवृत्तिरूप अशुद्ध व्यवहार। विवेचनरूप अशुद्ध व्यवहार तो अनेक प्रकार का है। दूसरा जो प्रवृत्तिरूप अशुद्ध व्यवहार है उस के तीन भेद हैं–वस्तुप्रवृत्ति, साधनप्रवृत्ति और लौकिकप्रवृत्ति । उन में भी साधनप्रवृत्ति के तीन भेद हैं–लोकोत्तरसाधनप्रवृत्ति, कुप्रावचनिक साधनप्रवृत्ति और लोकव्यवहार साधनप्रवृत्ति । लोकोत्तरसाधनप्रवृत्ति–जो अरिहन्त की आज्ञा से शुद्ध साधनमार्ग में इहलोक संसार पुद्गल भोग आशंसादि दोष रहित जो रत्नत्रयी की परिणति परभाव त्याग सहित

नहीं मानता है। स्थूलऋजुसूत्रवाला बाह्य प्रवृत्ति अथवा कथनी के कथनेवाले को जैसा देखता है वैसा ही मानता है।

(शब्द नय)

शब्द नय के चार भेद हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। इन चार भेदों को ही जैनशास्त्र में निक्षेप कहते हैं।

(समभिरूढ नय)

समभिरूढ नय का यह एक ही भेद है।

(एवंभूत नय)

एवंभूत नय का भी पूर्वोक्त केवल एक ही भेद है।

अब अन्य प्रकार से भी नयों के भेद कहते हैं—

---

१ इसके अन्यठिकाने सात भेद भी कहे हैं, देखो नयचक्र देवचन्दजी कृत। २ इन निक्षेपों का विशेष विवरण देखो, आगमसार नयचक्र, द्रव्यानुभवरत्नाकर आदि। ३ इस के अन्य ठिकाने दो भेद भी कहे हैं देखो नयचक्र देवचंदजी कृत।

(नैगम नय)

नैगमनय भूत भावी और वर्त्तमान काल के भेद से तीन प्रकार का है—भूत नैगम, भावी नैगम और वर्त्तमान नैगम। अतीत काल में वर्त्तमान काल का आरोप करना वह भूत नैगम है, जैसे दीपमालिका के दिन कहना कि आज श्री वर्द्धमान स्वामी मोक्ष गये। भावी नैगम उसे कहते हैं जो भावी (भविष्यत्) काल में भूतकाल का आरोप करना, जैसे श्री अरिहन्त देव हैं सो सिद्ध ही हैं, ऐसा कहना। वर्त्तमान नैगम उसे कहते हैं जो वस्तु करने को प्रारम्भ की वह कुछ हुई कुछ न हुई हो उस वस्तु को हुई कहना जैसे ओदन (चाँवल) पकाया नहीं है परन्तु पकाने की तैयारी कर रहे हैं उस समय कहे कि ओदन पकाते हैं।

(संग्रह नय)

संग्रह नय के दो भेद हैं— सामान्यसंग्रह और विशेष संग्रह। सामान्यसंग्रह वह है जो सब वस्तुको सामान्यपने ग्रहण करे, जैसे— सब द्रव्य परस्पर अविरोधी हैं ऐसा कहना। विशेषसंग्रह वह है जो अन्य वस्तु को त्याग कर स्वजाति को संग्रह करे, जैसे

सब जीव चेतनस्वभाव द्वारा विरोधरहित है ऐसा कहना।

(व्यवहार नय)

व्यवहारनय दो प्रकार का है—सामान्यसंग्रहभेदक व्यवहार और विशेषसंग्रहभेदकव्यवहार। सामान्यसंग्रहभेदकव्यवहार- जैसे जो द्रव्य है सो जीव अजीव स्वरूपी है ऐसा कहना। विशेष संग्रहभेदक-व्यवहार—जैसे जीव है सो संसारी भी है मुक्त भी है, ऐसा कहना।

(ऋजुसूत्र नय)

ऋजुसूत्र नय के भी दो भेद हैं- सूक्ष्मऋजुसूत्र और स्थूल ऋजुसूत्र। सूक्ष्म ऋजुसूत्र—जो सूक्ष्मपने वस्तु को संग्रह करे तथा जो एक समयावस्थायी पर्याय माने। स्थूलऋजुसूत्र-- जो स्थूलपणे वस्तु को संग्रह करे; तथा मनुष्यादि पर्यायको अपने २ आयुः प्रमाण काल तक ठहरना माने।

(शब्द नय)

शब्द नय एक प्रकार का है—जो शब्द के द्वारा ही वस्तु

को जाने जैसे-दारा, भार्या कलत्र। ये शब्द अनेक हैं परन्तु अर्थ एक ही है।

(समभिरूढ नय)

समभिरूढ नय का भी एक भेद है जो जहां जैसी स्थापना कर के वस्तु को दृढ करे जैसे गो पशु है।

(एवंभूत नय)

एवंभूत नय का भी एक भेद है-जो जहां सार्थक पने शब्द पकड़कर नाम ले जैसे-'इन्दतीति इन्द्रः' जो ऐश्वर्य धारण करे उसी का नाम इन्द्र है।

६ दृष्टान्तद्वार.

सात नयों पर तीन दृष्टान्त हैं–पायली[१], वसती और प्रदेश।

पायली का दृष्टान्त–

कोई पुरुष हाथ में फरसी (कुल्हाड़ी) ले वन जंगल को चला, उस पुरुष को देख कर किसीने कहा कि हे भाई! तू कहां जाता है? तब वह अविशुद्ध नैगम

१ देश विदेश में प्रसिद्ध धान्य नापने का एक पात्र

नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायली लेने को जाता हूँ, अब वृक्ष छेदते हुए उस को देख कर किसी पुरुष ने पूछा भाई! तूँ क्या छेदता है?, तब वह विशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि भाई! मैं पायली छेदता हूँ। अब वह वृक्ष काट कर घर लाया और घड़ने लगा तब किसी ने पूछा कि भाई! तू क्या घड़ता है? तब वह विशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायली घड़ता हूँ। उस लकड़ को थींक्षणी से कोरते हुए को देख कर किसी ने पूछा कि भाई! तूं क्या कोरता है?,तब वह विशुद्धतर नैगमनय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायली कोरता हूँ। उस को लेखिनी से समारते हुए को देखकर किसी ने पूछा कि भाई! तूं क्या समारता है? तब वह अत्यन्त विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायली को समारता हूँ। अब वह पायली संपूर्ण तैयार हो गई और उस को पायली कहना, यहां तक विशुद्धतर नैगमनय का अभिप्राय है। व्यवहार नय का भी इसी तरह मानना है। तब संग्रहनय वाला बोला कि भाई! जब इस में धान्य भरोगे तब यह पायली कही जायगी अन्यथा यह काष्ठ है। ऋजुसूत्र नय वाला

कहता है कि जब पायली में धान्य भर कर एक दो तीन चार पांच, इत्यादि शब्द कर के धान्य मापेंगे तब पायली कही जायगी अन्यथा यह काष्ठ है और यह धान्य है । तब शब्दादि तीन नय वाले बोले कि उस पायली में धान्य भर के जब उपयोग सहित एक दो तीन चार पांच इत्यादि शब्द करके मापेंगे तब पायली कही जायगी अन्यथा यह काठ है यह धान्य है और यह शब्द है ।

वसती का दृष्टान्त–

पाटलीपुत्र नगर के रहने वाले पुरुष को किसी निपुण पुरुष ने पूछा कि भाई ! तुम कहां रहते हो ? तब वह पुरुष अविशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं लोक में रहता हूँ । तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई! लोक तो तीन हैं–ऊर्ध्वलोक (ऊंचालोक) अधोलोक (नीचालोक) और तिर्यग्लोक (तिरछालोक), तो क्या तू तीनों लोकों में रहता है ? तब वह पुरुष विशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं तिरछालोक में रहता हूँ । तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई ! तिरछालोक में तो जम्बूद्वीप से लेकर स्वयंभूरमण समुद्र तक असंख्यात द्वीप समुद्र हैं तो क्या

तूं इन सब द्वीप समुद्रों में रहता है ? तब वह विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं मध्य जम्बूद्वीप में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई! मध्य जम्बूद्वीप में तो दश क्षेत्र[1] हैं तो क्या तूं इन दशों ही क्षेत्रों में रहता है ? तब वह पुरुष अत्यन्त विशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं भरतक्षेत्र में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई! भरतक्षेत्र तो दो हैं - दक्षिणार्द्ध भरत और उत्तरार्द्ध भरत, तो क्या तूं दोनों ही क्षेत्रों में रहता है ? तब वह पुरुष अत्यन्त विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं दक्षिणार्द्ध भरत क्षेत्र में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि दक्षिणार्द्ध भरत क्षेत्र में तो ग्राम, आगर, नगर, खेड़, कब्बड़ मडम्ब, द्रोणमुख, पट्टण, आश्रम, संवाह, संनिवेश आदि बहुत से हैं तो क्या तूं इन सभी में रहता है ? तब वह पुरुष फिर कुछ अधिक विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पाटलीपुत्र नगर में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि पाटलीपुत्र नगर में तो बहुत

---

१ क्षेत्रों के नाम—भरत, एरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवास, रम्यकवास, देवकुरु, उत्तरकुरु, पूर्वमहाविदेह, पश्चिममहाविदेह क्षेत्र।

से घर हैं तो क्या तू सभी घरों में रहता है? तब वह पुरुष फिर कुछ अधिक विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं देवदत्त के घर में रहता हूँ, तब वह निपुण पुरुष बोला कि देवदत्त के घर में तो कोठे बहुत हैं तो क्या तू सभी कोठों में रहता है? तब वह पुरुष फिर कुछ अधिक विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं मध्य घर (कोठे) में रहता हूँ। यहाँ तक तो विशुद्धतर नैगम नय का अभिप्राय है। तथा व्यवहार नय का भी अभिप्राय इसी प्रकार का है। तब उक्त पुरुष को निपुण पुरुष ने कहा कि भाई! मध्य घर (कोठे) में तो जगह बहुत है तो तू कहां रहता है? तब वह पुरुष संग्रह नय के अभिप्राय से बोला कि भाई! मैं अपनी शय्या पर रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई! शय्या को तो बहुत से आकाश प्रदेशों ने अवगाह है तो तू कहाँ रहता है? तब वह पुरुष ऋजुसूत्र नय के अभिप्राय से बोला कि मेरा आत्मा (शरीर) ने जितने आकाशप्रदेश अवगाहे हैं उतने में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई! आकाश प्रदेशों को तो जीव और अजीव दोनों ने भी अवगाहे हैं तो तू कहां

१ [illegible] । २ [illegible] ।

रहता है? तब वह शब्दादि तीन नयों के अभिप्राय से बोला कि मैं अपने आत्मस्वरूप में रहता हूँ।

प्रदेश का दृष्टान्त—

नैगम नय वाला छह द्रव्यों का प्रदेश कहता है जैसे- धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीव का प्रदेश, पुद्गल-स्कन्ध का प्रदेश, देश का प्रदेश। नैगम नय वाले के ऐसे कहनेपर संग्रह नय वाला बोला कि जो तू छह द्रव्यों का प्रदेश कहता है सो छह द्रव्यों का प्रदेश नहीं होता है क्यों कि देश का जो प्रदेश है वह उसी द्रव्य (स्कन्ध) का है किन्तु छठा प्रदेश अलग नहीं है, इस पर दृष्टान्त कहते हैं- जैसे किसी साहूकार के दास ने खर (गर्दभ) खरीदा तब वह साहूकार कहता है कि दास भी मेरा और खर भी मेरा है परन्तु खर दास का नहीं कहलाता है। इस दृष्टान्त से छह द्रव्यों का प्रदेश मत कहो परन्तु पांच द्रव्यों का प्रदेश कहो—

१ शब्दनय के अभिप्राय से कहता है कि मैं अपने स्वभाव में रहता हूं। समभिरूढ नय के अभिप्राय से कहता है कि मैं अपने गुणों में रहता हूं। एवंभूतनय के अभिप्राय से कहता है कि मैं अपने ज्ञान दर्शन के उपयोग में रहता हूं।

धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आ
काशास्तिकाय का प्रदेश, जीव का प्रदेश और पुद्ग
स्कन्ध का प्रदेश। संग्रहनय वाले के ऐसे बोलने
व्यवहार नय वाला कहता है कि जो तू पांच का प्रदे
कहता है सो नहीं होता है, किस कारणसे? सो कहते
जैसे पांच मित्र मिल कर (शामिल में) कोई ध
खरीदते हैं रूपा सोना धन धान्य आदि तो वे रू
सोना आदि उन पांचों का कहलाता है, इसी री
से पांचों का प्रदेश कहने से ऐसी शङ्का होती है
पांचों के मिलने पर एक प्रदेश होता होगा, इस वास्
पांच का प्रदेश मत कहो परन्तु प्रदेश पांच प्रकार का
ऐसा कहो जैसे-धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिक
का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीव का प्रदे
पुद्गलस्कन्ध का प्रदेश। व्यवहार नय वाले के ऐसे क
पर ऋजुसूत्र नय वाला कहता है कि जो तू पांच प्र
का प्रदेश कहता है सो नहीं होता है, किस का
से? कि पांच प्रकार का प्रदेश कहने से ऐसी शङ्का
होती है कि एकेक द्रव्य का प्रदेश पांच पांच प्रकार
होता होगा, इस तरह पचीस प्रकार के प्रदेश हो जा
हैं इसलिए पांच प्रकार का प्रदेश मत कहो किन्तु 'भ
ज्यो' भजनीय प्रदेश कहो-१ स्यात् धर्मास्तिकाय का प्र

२ स्यात् अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, ३ स्यात् आकाशास्तिकाय का प्रदेश, ४ स्यात् जीव का प्रदेश, ५ स्यात् पुद्गलस्कन्ध का प्रदेश। ऋजुसूत्र नय वाले के ऐसे बोलने पर शब्द नय वाला कहता है कि जो तूं 'भइयव्वो' भजनीय प्रदेश कहता है सो नहीं होता है क्यों कि भजनीय प्रदेश कहने से ऐसी शङ्का प्राप्त होती है कि जो धर्मास्तिकाय का प्रदेश है वही स्यात् अधर्मास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् आकाशास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् जीव का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् पुद्गलस्कन्ध का भी प्रदेश होता होगा। इस रीति से जो अधर्मास्ति काय का प्रदेश है वही स्यात् धर्मास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् आकाशास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् जीव का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् पुद्गलस्कन्ध का भी प्रदेश होता होगा। इसी तरह आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीव का प्रदेश और पुद्गलस्कन्ध का प्रदेश को भी समझ लेना चाहिये। ऐसे (भजनीय प्रदेश) कहने से तो अनवस्था दोष की प्राप्ति होगी इसलिए भजनीय प्रदेश मत कहो किन्तु ऐसा कहो कि जो धर्मरूप द्रव्य का प्रदेश है वही धर्मप्रदेश है, जो अधर्मरूप द्रव्य का प्रदेश है वही अधर्म प्रदेश है, जो

आकाश रूप द्रव्य का प्रदेश है वही आकाशप्रदेश है, जो जीवरूप द्रव्य का प्रदेश है वह जीव नहीं है, जो पु-द्गलस्कन्ध रूप द्रव्य का प्रदेश है वह पुद्गलस्कन्ध नहीं है। शब्द नय वाले के ऐसे कहने पर समभिरूढ नय वाला बोलता है कि जो तूं धर्मरूप द्रव्य का प्रदेश को धर्म प्रदेश कहता है शेष पूर्ववत् यावत् जो पुद्गलस्क-न्धरूप द्रव्य का प्रदेश को पुद्गलस्कन्ध नहीं कहता है, यह नहीं होता क्योंकि इस जगह समास दो होते हैं तत्पुरुष और कर्मधारय, न मालूम कि तूँ किस समास के अभिप्राय से बोलता है, तत्पुरुष समास के अभिप्राय से बोलता है ? या कर्मधारय समास के अभिप्राय से ? जो तूं तत्पुरुष समास के अभिप्राय से बोलता है तो ऐसा मत कहो और अगर कर्मधारय समास के अभिप्राय से कहता है तो विशेष प्रकार से कहो, जैसे– "धम्मे अ से पएसे अ से पएसे धम्मे। अहम्मे अ से पएसे अ से पएसे अहम्मे। आगासे अ से पएसे अ से पएसे आगासे। जीवे अ से पएसे अ से पएसे नोजीवे। खंधे अ से पएसे अ से पएसे नो-खंधे।" अर्थ– धर्मास्तिकाय का जो प्रदेश है वही प्रदेश धर्मद्रव्य है। अधर्मास्तिकाय का जो प्रदेश है वही प्रदेश अधर्मद्रव्य है। आकाशास्तिकाय का जो

प्रदेश है वही प्रदेश आकाश द्रव्य है। जीव का जो प्रदेश है वह प्रदेश जीवद्रव्य नहीं है और पुद्गलस्कन्ध का जो प्रदेश है वह प्रदेश पुद्गलस्कन्ध नहीं है। समभिरूढ नय वाले के ऐसे बोलने पर एवंभूत नय वाला कहता है कि जो जो धर्मास्तिकायादिक वस्तु तुं कहता है वह वह 'सर्वं' सब 'कृत्स्नं' देशप्रदेशकल्पनारहित, 'प्रतिपूर्णं' स्व स्वरूप से अभिन्न, 'निरवशेषं' अवयवरहित, 'एकग्रहणगृहीतं' जो एकही नाम से बोलाजावे नतु अनेक नामों से, कारण कि नाम के भेद से वस्तु में भेद की आपत्ति होजाती है इस लिए धर्मास्तिकायादि वस्तु को संपूर्ण कहो किन्तु देशप्रदेशादिरूप से मत कहो क्यों कि देश भी मेरे मत में वस्तु नहीं है और प्रदेश भी मेरे मत में वस्तु नहीं है, सिर्फ अखण्ड वस्तु का ही सत्त्व से उपयोग होता है॥

७ नयावतार द्वार

प्रथम जीव के विषय में सात नय कहते हैं—नैगमनय के मत से गुण पर्याय और शरीर सहित सभी जीव हैं, इस नय ने ऐसे कहते हुए पुद्गलद्रव्य धर्मास्तिकाय आदि को भी जीव में गिनलिया। संग्रह नय कहता है कि असंख्यात प्रदेश वाला जीव है, इस नय

ने केवल आकाश प्रदेश को छोड़ दिया। व्यवहार नय कहता है कि जो विषयों को ग्रहण करे, कामादि की चिन्ता करे, पुण्यादि किया करे वह जीव है, इस ने धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश तथा अन्य सब पुद्गलों को छोड़ दिया किन्तु पांच इन्द्रियां, मन और लेश्या आदि सूक्ष्म पुद्गलों को जीव में ही गर्भित रक्खा, क्यों कि यह नय इन्द्रियादि विषयों को लेता है। ऋजुसूत्र नय कहता है कि जो उपयोग वाला है वही जीव है, इस नय ने सब पुद्गलों से जीव का पृथग्भाव तो किया किन्तु ज्ञान अज्ञान का भेद नहीं किया। शब्द नय के अभिप्राय से नाम स्थापना द्रव्य और भाव इन चारों निक्षेपों वाला जीव है, इस नय ने गुण और निर्गुण का भेद नहीं किया। समभिरूढ नय वाला कहता है कि जो ज्ञानादिक गुणों से युक्त है वही जीव है, इस नय ने मतिज्ञान और श्रुतज्ञान आदि जो साधक अवस्था के गुण हैं उन को भी जीव में शामिल किया। एवंभूत नय के अभिप्राय से वही जीव है जो अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त चारित्र और अनन्त वीर्य से युक्त होकर शुद्ध सत्ता वाला है, इस नय ने सिद्ध अवस्था के जो गुण हैं उन्हीं गुणों से युक्त को जीव कहा है।

अब धर्म के विषय में सातों नयों को उतारते हैं—
नैगमनय के मत में सब धर्म हैं क्यों कि सब
कोई धर्म की इच्छा रखता है, इस नयने अंशरूप
धर्म को भी धर्म नाम कहा है। संग्रह नय के मत से
जो वंशपरम्परा का धर्म है वही धर्म है, इस नय ने
अनाचार को छोड़कर कुलाचार को ग्रहण किया है।
व्यवहारनय के मत से जो सुख का कारण है वही
धर्म है, इस नय ने पुण्य की करनी को ही धर्म कहा।
ऋजुसूत्र नय के मत से उपयोगसहित वैराग्यपरि-
णाम को धर्म कहते हैं, इस में यथाप्रवृत्तिकरण का परि-
णाम भी धर्म हो जाता है जो परिणाम मिथ्यात्वी
लोगों को भी होता है। शब्दनय के मत से समकित
की प्राप्ति को ही धर्म कहते हैं क्यों कि धर्म का
मूल समकित है। समभिरूढ नय के मत से जीव
अजीवादि नव तत्वों को या छह द्रव्यों को जानकर
अजीव का त्याग करनेवाला और जीव-सत्ता को
ध्यानेवाला जो ज्ञान दर्शन चारित्र का परिणाम वही
धर्म है, इस नय ने साधक और सिद्ध इन दोनों परि-
णामों को धर्म में अङ्गीकार किया। एवंभूत नय के
मत से शुक्लध्यान रूपातीत परिणाम और क्षपकश्रेणि,
ये जो कर्मक्षय के हेतु हैं वेही धर्म है क्यों कि जीव

का मूलस्वभाव ही धर्म है, इस धर्म से ही मोक्षरूप कार्य की सिद्धि होती है।

अब सिद्ध के विषय में सातों नयों को उतारते हैं–

नैगम नय के मत से सब जीव सिद्ध हैं क्यों कि कुछ ज्ञान का अंश तो प्रायः सब जीवों में रहता है। तथा ग्रन्थों में ऐसा भी कहा है– आठ रुचक प्रदेश तो सब जीवों के सिद्ध के प्रदेशों के समान अत्यन्त निर्मल ही रहते हैं उन में कर्म कदाऽपि नहीं लग सकते। संग्रह नय के मत से सब जीवों की सत्ता सिद्ध के समान है, इस नयने पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा छोड़ कर द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा को अंगीकार किया है। व्यवहार नय के मत से मन की एकाग्रता कर के योगसिद्धि करे उसे सिद्ध कहते हैं, इस नय ने व्यवहार को मुख्य माना है। ऋजुसूत्र नय के मत से जिस ने सिद्ध की और अपने आत्मा की सत्ता को पिछानी है और उपयोग सहित होकर ध्यान में लीन होवे, तथा जिस समय अपने जीव को सिद्धसमान माने उस वखत वह सिद्ध है, इस नय की दृष्टि से क्षायिक समकिती (सम्यक्त्वी) मोक्ष सिद्धि के लिए जो समकित से लेकर ज्ञान दर्शन चारित्र आराधने की जो जो क्रिया करने वाला है वह सिद्ध है। शब्द नय के मत से जो भावनिक्षेप से युक्त

शुद्ध उपयोग की एकाग्रता से धर्म शुक्ल ध्यान द्वारा समकितादि (सम्यक्त्वादि) गुण को प्रकट करता हुआ मोहनाशक १२ वें गुणठाणे क्षीणमोही होकर आत्म-सिद्धियों को प्राप्त करे वह सिद्ध है। इस नय ने क्षपक श्रेणि वाले को सिद्ध माना है। समभिरूढ नय के मत से जो केवलज्ञान केवल दर्शन आदि गुणों से विभूषित है वही सिद्ध है, इस नय ने १३ वें १४ वें गुणठाणा में वर्त्तमान केवली भगवान् को भी सिद्ध माना है। एवंभूत नय के मत से वही सिद्ध कहा जा सकता है जो अष्ट कर्मों का क्षय कर के लोक के अग्रभाग में विराजमान और आठों गुणों से युक्त है।

अब समायिक पर सात नय उतारते हैं—

नैगम नय के मत से जब सामायिक करने का परिणाम हुआ तब ही सामायिक माना जाता है। संग्रह नय के मत से सामायिक के उपकरण लेकर विनयपूर्वक गुरु के समीप जाकर विधिपूर्वक आसन बिछाता है उस वखत सामायिक कहा जाता है। व्यवहार नय के मत से "करेमि भंते" का पाठ उच्चारण कर सावद्य योग का त्याग पूर्वक पच्चखाण (प्रत्याख्यान) करे उस वखत सामायिक माना जाता

है। ऋजुसूत्र नय के मत से मन वचन और काया के योग जब शुभ भाव में प्रवर्त्तने लगे तब ही सामायिक कहा जाता है। शब्द नय के मत से जीव और अजीव को सम्यक् प्रकार जानकर जीव-सत्ता को ध्याने और अजीव से ममत्व भाव को दूर करे उस वखत सामायिक कहा जाता है। इस नय के अभिप्राय से क्षायिक सम्यक्त्व वाले के सामायिक माना है। समभिरूढ नय के मत से शुद्ध आत्मस्वरूप में रमण करे उस वखत सामायिक माना जाता है, इस नय ने केवली भगवान् के ही सामायिक माना है। एवंभूत नय के मत से सकल कर्म रहित शुद्ध आत्मा शुद्ध उपयोग युक्त अनन्त चतुष्टय[1] सहित के सामायिक माना जाता है, इस नय के अभिप्राय से सिद्धों के सामायिक माना है।

अथ बाण पर सात नय उतारते हैं—

मार्ग में जाते हुए किसी पुरुष को बाण लगा तब वह पुरुष बाण को हाथ में लेकर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि यह बाण मुझे लगा है और बहुत दुःख देता है। तब संग्रह नय वाला बोला कि

---

१ अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य।

बाण का तो कोई कसूर नहीं है बाण तो किसी पुरुष के हाथ से छुटा है इस वासते बाण के चलाने वाले का कसूर है। तब व्यवहार नय वाला बोला कि भाई! बाण मारने वाले का कोई कसूर नहीं है परन्तु तुम्हारे अशुभ ग्रह का जोर है अर्थात् अशुभ ग्रह का कसूर है। तब ऋजुसूत्र नय वाला बोला कि भाई! ग्रह का कोई कसूर नहीं है क्योंकि ग्रह तो सब ही समानदृष्टि वाले हैं किसी को भी दुःख देते नहीं हैं परन्तु तुम्हारे कर्मों का कसूर है। तब शब्दनय वाला बोला कि भाई! कर्मों का कोई कसूर नहीं है क्योंकि कर्म तो जड़ (अचेतन) हैं, कर्मों के करने वाले तो अपने जीव ही हैं, जिस परिणाम से कर्म करते हैं से ही फल भोगते हैं इसलिए तुम्हारे जीव का ही सूर है। तब समभिरूढ़ नय वाला बोला कि भाई! व का तो कोई कसूर नहीं है जैसा केवली भगवान् भाव देखा हो वैसा ही जीव का परिणाम होता है, नुसार कर्म करता है, और वैसा ही फल भोगता है, न को कोई टालने समर्थ नहीं है इसलिए समभाव अवलम्बन करना चाहिये। तब एवंभूत नय वाला ला कि ये सुख दुःख आदि सब बाह्य व्यवहार रूप त्ति है, कर्मों का कर्त्ता तथा भोक्ता कर्म ही है परन्तु

प्रकार—१ द्रव्य के पर्याय को ग्रहण करने वाला, भव्यत्व सिद्धत्व वगैरह द्रव्यके पर्याय हैं। २ द्रव्य के व्यञ्जन पर्यायों को मानने वाला, द्रव्य के प्रदेश मान वगैरह व्यञ्जन पर्याय कहेजाते हैं। ३ गुणपर्याय को मानने वाला, एक गुण से अनेकता होनी गुणपर्याय है जैसे धर्मादि द्रव्यों के एक गति—सहायकता गुण से अनेक जीव और पुद्गलों को सहायता करनी। ४ गुण के व्यंञ्जन पर्यायों का स्वीकार करनेवाला, एक गुण के अनेक भेदों को उसके व्यञ्जन—पर्याय कहते हैं। ५ स्वभाव पर्यायोंको मानने वाला, स्वभावपर्याय अगुरुलघु को कहते हैं, ये पांचों पर्यायें सब द्रव्य में हैं। ६ विभावपर्यायको माननेवाला पर्यायार्थिक नय का छठा भेद है, विभावपर्याय जीव और पुद्गल में ही है अन्य द्रव्य में नहीं, जीव का चारों गतियों में नये नये भावों का ग्रहण करना और पुद्गल का स्कन्ध वगैरह होना ही क्रमशः उन दोनों द्रव्यों के विभावपर्याय हैं।

प्रकारान्तर से पर्यायार्थिक नय के छह भेद कहते हैं— १ अनादिनित्यपर्याय— जैसे पुद्गलद्रव्य का मेरु प्रमुख पर्याय। २ सादिनित्यपर्याय— जैसे जीवद्रव्य का सिद्धत्व पर्याय। ३ अनित्यपर्याय— जैसे प्रत्येक समय में द्रव्य उत्पन्न होता है और नष्ट होता है।

४ अशुद्धअनित्यपर्याय–जैसे जीव–द्रव्य के जन्म और मरण । ५ उपाधिपर्याय–जैसे जीव के साथ कर्मों का सम्बन्ध । ६ शुद्धपर्याय–जैसे, मूलपर्याय[1] सब द्रव्यों का एकसमान है ।

अब दूसरी तरह से भी द्रव्यार्थिक के १० भेद और पर्यायार्थिक के ६ भेद कहते हैं जिस में द्रव्यार्थिक के १० भेद इस प्रकार–१ कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक–जो कर्मादि स्वरूप से अलग शुद्ध स्वरूप का अनुभव करना, जैसे संसारी जीव को सिद्धसमान कहना । २ उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक–जो उत्पाद व्यय की गौणता कर सत्ता स्वरूप से वस्तु को ग्रहण करना, जैसे द्रव्य नित्य है ऐसा कहना । ३ भेद कल्पनानिरपेक्ष(भिन्नस्वगुणपर्याय से अभिन्नशुद्ध द्रव्य का ग्राहक)शुद्ध द्रव्यार्थिक–जो भेद कल्पना से अभिन्न शुद्ध वस्तु कहना जैसे निजगुणपर्याय से द्रव्य अभिन्न है ऐसा कहना । ४ कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक–जो कर्मोपाधि संयुक्त वस्तु का अनुभव करना, जैसे आत्मा को क्रोधी मानी आदि कहना । ५ उत्पादव्ययप्राधान्येन सत्ताग्राहक–अशुद्ध द्रव्यार्थिक-

१ अगुरुलघु पर्याय ।

उत्पाद व्यय से संयुक्त वस्तु का अनुभव करना, जैसे वस्तु एक समय में उत्पाद व्यय और ध्रौव्य से संयुक्त है, ऐसा कहना। ६ भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक—जो भेदकल्पना करके संयुक्त अशुद्ध वस्तु का अनुभव करना, जैसे 'ज्ञान दर्शनादिक आत्मा का गुण हैं' ऐसा कहना। ७ अन्वय द्रव्यार्थिक—जो गुण पर्याय स्वभाव करके वस्तु का अनुभव करना, जैसे गुण—पर्याय—स्वभाववन्त द्रव्य है ऐसा कहना। ८ स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक—जो स्वद्रव्य को ही ग्रहण करे जैसे स्वद्रव्यादिचतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य है ऐसा कहना। ९ परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक—जो परद्रव्य करके वस्तु को ग्रहण करे जैसे परद्रव्यादिचतुःष्टय की अपेक्षा से द्रव्य नहीं है ऐसा कहना। १० परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक—जो स्वकीय स्वरूप का अनुभव करना जैसे ज्ञानस्वरूपी आत्मा है ऐसा कहना।

पर्यायार्थिक नय के दूसरी तरह से ६ भेद इस प्रकार—अनादिनित्य पर्यायार्थिक जो अनादि और नित्य पर्याय पने वस्तु का अनुभवविषय, जैसे पुद्गलपर्याय नित्य है मेरु प्रमुख। २ सादिनित्यपर्यायार्थिक—जो सादि

२ द्रव्य क्षेत्र काल भाव।

करके संयुक्त है परन्तु नित्य है और पर्याय पने अनुभव करना, जैसे सिद्धों का पर्याय नित्य है। ३ अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक– जो सत्ता को गौण करके उत्पाद व्यय स्वभाव से अनुभव करना जैसे समय समय प्रति पर्याय विनाशवान् है। ४ सत्ता सापेक्ष स्वभाव नित्याशुद्ध पर्यायार्थिक– जो सत्ता स्वभाव संयुक्त नित्य अशुद्ध पर्याय पने अनुभव करना जैसे एक समय में पर्याय तीन स्वभावात्मक है। ५ कर्मोपाधिनिरपेक्षस्वभावनित्यशुद्ध पर्यायार्थिक– जो कर्म के उपाधि स्वभाव से भिन्न नित्य शुद्ध पर्याय पने अनुभव करना, जैसे संसारी जीव के पर्याय सिद्धपर्याय के समान शुद्ध है। ६ कर्मोपाधि सापेक्षस्वभाव अनित्याशुद्ध पर्यायार्थिक– जो कर्मोपाधि स्वभाव से संयुक्त अनित्याशुद्ध पर्याय पने अनुभव करना, जैसे संसारी जीवों की उत्पत्ति और विनाश है।

९ सप्तभङ्गीद्वार.

भङ्गों के नाम— १ स्यात् अस्ति, २ स्यात् नास्ति, ३ स्यात् अस्ति नास्ति, ४ स्यात् अवक्तव्य, ५ स्यात्

१ पूर्वपर्यायस्य विनाशः, उत्तरपर्यायस्योत्पादः, द्रव्यत्वेन ध्रुवत्वम्।

अस्ति अवक्तव्य, ६ स्यात् नास्ति अवक्तव्य, ७ स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य। भङ्गों के लक्षण-- १ अनेकान्तरूप से अर्थात् अपने द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की अपेक्षा लेकर सब पदार्थ विद्यमान हैं यह 'स्यात् अस्ति' नाम का प्रथम भङ्ग है, जैसे जीवद्रव्य अपने गुण और पर्यायों की अपेक्षा से अस्ति-- विद्यमान है, ऐसे ही सब द्रव्यों में अपनेर गुण और पर्यायों की अपेक्षा को लेकर सत्त्व कहना, यह प्रथम भङ्ग का रहस्य है। २ परद्रव्यादि कों की अपेक्षा से वस्तु का निषेध बतलानेवाला 'स्यात्नास्ति' नाम का दूसरा भङ्ग है, जैसे जीव द्रव्य में अन्य पांचों द्रव्यों के गुण-पर्याय नहीं हैं इस से परकीय गुण पर्यायों वाला जीव द्रव्य नहीं है। ३ तीसरे भङ्ग का नाम है- 'स्यात् अस्ति-नास्ति' जो एक ही समय में एक ही वस्तु में अपने द्रव्यादि की अपेक्षा अस्तिता और परद्रव्यादि की अपेक्षा नास्तिता है। ४ चौथा भङ्ग 'स्यात् अवक्तव्य' नाम का, जो एक वस्तु में उपर्युक्त तृतीय भङ्ग के अनुसार एक ही समय में अस्तिता और नास्तिता है लेकिन दोनों (अस्तिता और नास्तिता) धर्म युगपत (एक साथ) वचन द्वारा नहीं कहे जासकते क्यों कि वचन क्रम से बोला जाता है, अस्ति शब्द के उच्चारण

करते समय परद्रव्यादि की अपेक्षा से वस्तु में विद्य-मान (रहा हुआ) नास्ति धर्म नहीं बोला जाता इस लिए वह अवक्तव्य है। ५ उसी अवक्तव्यता के साथ वस्तु में अस्तिधर्म भी है इस से यह 'स्यात् अस्ति अवक्तव्य' नाम का पांचवाँ भङ्ग होता है। ६ इसी तरह नास्तिधर्म भी अवक्तव्यता के साथ वस्तु में है इस से यह 'स्यात् नास्ति अवक्तव्य' नाम का छठा भङ्ग होता है। ७ वही अस्तिपन और नास्तिपन दोनों धर्म युगपत् (एकसाथ) वस्तु में कहा नहीं जासकता इस लिये अवक्तव्य और क्रम से अस्तिनास्ति है इस से यह 'स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य' नाम का सातवाँ भङ्ग होता है।

नित्य अनित्य पक्ष में इस प्रकार सप्तभङ्गी होती हैं—१ स्यात् नित्य, २ स्यात् अनित्य, ३ स्यात् नित्या-नित्य, ४ स्यात् अवक्तव्य, ५ स्यात् नित्य अवक्तव्य, ६ स्याद् अनित्य अवक्तव्य, ७ स्यात् नित्यानित्य युगपत् अवक्तव्य।

अब एक-अनेक गुण-पर्याय पक्ष में भी सप्तभङ्गी दिखाते हैं—१ स्यात् एक, २ स्यात् अनेक, ३ स्यात् एक-अनेक ४, स्यात् अवक्तव्य, ५ स्यात् एक अवक्तव्य, ६ स्यात्

अनेक अवक्तव्य,७ स्यात् एक अनेक युगपद् अवक्तव्य।

१०सात नयों के ७०० भेद द्वार.

सात नयों के मूल भेद दो हैं द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। द्रव्यार्थिक नय के तीन भेद हैं- १ नैगम २ संग्रह और ३ व्यवहार। पर्यायार्थिक नय के चार भेद हैं-१ ऋजुसूत्र २ शब्दनय ३ समभिरूढ ४ एवंभूत

पूर्वोक्त द्वार ८ वाँ पृष्ठ ४३ में दूसरी तरह से द्रव्यार्थिकनय के १० भेद और पर्यायार्थिक नय के ६ भेद कहे हैं उन में से द्रव्यार्थिक नय के १० भेदों को "नैगम नय के तीन भेद- अतीत अनागत और वर्त्तमान। संग्रह नय के दो भेद-सामान्य संग्रह और विशेष संग्रह। व्यवहार नय के दो भेद- सामान्य संग्रह भेदक व्यवहार और विशेषसंग्रहभेदक व्यवहार।" इन सातों के ऊपर गुणने से ७० भेद, और पर्यायार्थिक नय के ६ भेदों को "ऋजुसूत्र नय के दो भेद- सूक्ष्म ऋजुसूत्र और स्थूल ऋजुसूत्र, तथा शब्द समभिरूढ और एवंभूत, इन के एकेक भेद अर्थात् इन तीनों के तीन भेद" इन पांचों के ऊपर गुणने से ३० भेद। ये सब मिल कर १०० भेद हुए। इन (१००) भेदों को सात भंगों पर गुणने से ७०० भेद होते हैं।

११ निश्चयव्यवहार द्वार

पूर्वोक्त सातों नयों को सामान्य से निश्चय- और व्यवहार इन दोनों नयों में समावेश करते हैं—

निच्छयमग्गो मुक्खो, ववहारो पुण्णकारणो वुत्तो।
पढमो संवररूवो, आसवहेऊ तओ बीओ ॥१॥

तात्पर्यार्थ- निश्चय नय से सत्ता का ज्ञान मोक्ष का कारण है और व्यवहार नय से क्रियाओं का करना पुण्य का हेतु है इसलिए निश्चय नय संवररूप- संवर का कारण- है और व्यवहार नय आश्रव का साधन है, अर्थात् शुभव्यवहार पुण्य कर्मों का और अशुभ व्यवहार पाप कर्मों का आश्रव है। यहां पर कोई कहे कि व्यवहार को छोड़ कर केवल निश्चय का ही आदर करना ठीक है, इस का उत्तर यह है कि—

जइ जिणमयं पवज्जह, ता मा ववहारनिच्छए मुयह।
ववहारनयोच्छेए तित्थुच्छेओ जओऽवस्सं ॥२॥ / गेण विणा तित्थं,छिज्जइ अन्नेण ओ तचं ॥२॥

भावार्थ- भव्यजीवों को चाहिये कि यदि वे जिन- मत को अङ्गीकार करना चाहते हैं तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों नयों में से किसी का भी त्याग न करें। क्योंकि व्यवहार के अनुसार प्रवृत्ति और निश्चय

के अनुसार श्रद्धा करनी चाहिये। व्यवहार का उत्थापन करने से तीर्थ-शासन-का ही उच्छेद होता है। यथा- "नहु एगचक्केण रहो पयाति" अर्थात् एक चक्र से रथ नहीं चलता है। जो व्यवहार को नहीं मानता है वह गुरुवन्दना, जिनभक्ति, तप और प्रत्याख्यान आदि आचार-धर्म- को भी छोड़ देता है। आचार का त्याग करने से निमित्त कारण छोड़ दिया जाता है, निमित्त कारण के बिना केवल उपादान कारण से कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती, इसी से व्यवहार नय का मानना आवश्यक है। यदि केवल व्यवहार नय ही माना जाय तो बिना निश्चय नय के तत्त्वों के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान ही नहीं होने पाता और बिना यथार्थ ज्ञान (तत्त्वज्ञान) के मोक्ष नहीं हो सकता, इसलिए बिना निश्चय के व्यवहार निष्फल है, इन- व्यवहार और निश्चय-दोनों के मिलने से ही कार्य की सिद्धि होती है इसलिए शास्त्रों में-"ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" ऐसा कहा है, अर्थात् ज्ञानांश निश्चय और क्रियांश व्यवहार है, इन दोनों से ही मोक्ष होता है॥८॥

२ निक्षेप द्वार.

जत्थ य जं जाणेज्जा, निक्खवं निक्खिवे निरवसेसं।
जत्थवि य न जाणिज्जा, चउक्कगं निक्खिवे तत्थ ॥१॥
(अनुयोगद्वारसूत्र)

अर्थ- जिस जीवादि वस्तु में जितने निक्षेप अपने से हो सके उतने निक्षेप सब में करना चाहिये। जो सब निक्षेपों का स्वरूप न जान सके तो नाम स्थापना द्रव्य और भाव, ये चार निक्षेप तो जरूर करने चाहिये।१।

निक्षेप किस को कहते हैं? "प्रमाणनयोर्निक्षेपणं निक्षेपः।" इति वचनात्, प्रमाण और नय से वस्तु को स्थापित करें उसे निक्षेप कहते हैं। वह चार प्रकार का होता है- १नाम निक्षेप, २स्थापना निक्षेप, ३द्रव्य निक्षेप, और ४ भाव निक्षेप।

१ नाम निक्षेप-जिस पदार्थ में जो गुण नहीं है उस को उस नाम से कहना वह नाम निक्षेप है। इस के तीन भेद होते हैं- १यथातथ्य नाम, २अयथातथ्य-नाम, और ३ अर्थशून्य नाम। १ यथातथ्य नाम-गुण-निष्पन्न नाम अर्थात् जो नाम गुण कर के सहित हो, जैसे परम ऐश्वर्यादिरूप इन्द्र की पदवी के भोगने वाले

को ही इन्द्र कहना, ऐसे ही तीर्थङ्कर चक्रवर्ती वासुदेव, इत्यादि, अथवा जीव का नाम जीव चैतन्य आत्मा, इत्यादि अनेक भेद कहना। २. अयथातथ्यनाम-जो नाम गुण कर के रहित हो, जैसे गोपालदारकादि को इन्द्रादिक शब्द कर के बोलाना, अथवा तनसुख धनसुख नयनसुख परमसुख हेमचन्द्र हरितमल्ल नरसिंह अमरचन्द धनपाल, तथा लक्ष्मीबाई दयाबाई इत्यादि। ३ अर्थशून्य नाम-जो नाम अर्थ से शून्य हो और जिस नाम के अक्षर प्रकट रूप में न हों, जैसे हाँसी खाँसी छींक बगासी (जम्भाई) हुङ्कार और भ्रमर का शब्द, इत्यादि।

२ स्थापना निक्षेप- जो मङ्गल पदार्थ के अर्थ से शून्य हो और उसी मङ्गल पदार्थ के अभिप्राय से जिस में आकार दिया जावे, जैसे जम्बूद्वीप के पट में जम्बूद्वीप कहना, सतरंज के मोहरों को हाथी घोड़ आदि कहना, तथा लकड़ी के घोड़े को घोड़ा कहना इसके भी दो भेद हैं-सद्भावस्थापना और असद्भाव स्थापना। सद्भावस्थापना-जो चारभुजा की मूर्ति चार भुजा का आकार, नान्दिये की मूर्ति नान्दिये का आकार असद्भावस्थापना-गोलमोल ढोल को तेल सिन्दूर लगा कर कहे कि ये मेरे भेरोंजी ये मेरे क्षेत्रपालजी।

इस के भी दो भेद हैं- इत्तरिय (इत्वरिका) और आवकहिय (यावत्कथिका), इत्तरिय-जो थोड़े काल के लिए बनाई जावे, आवकहिय- जो जावजीव के लिए बनाई जावे।

३ द्रव्यनिक्षेप- जो पदार्थ आगामी परिणाम की योग्यता रखने वाला हो, जैसे राजा के पुत्र को राजा कहना। अथवा अतीत अनागत पर्याय के कारण को भी द्रव्यनिक्षेप कहते हैं, इस के दो भेद हैं—आगम-द्रव्यनिक्षेप और नोआगम-द्रव्यनिक्षेप।

४ भावनिक्षेप- जो वर्त्तमान पर्याय संयुक्त वस्तु हो, जैसे राज्य करते हुए पुरुष को राजा कहना। इस के दो भेद हैं- आगम भावनिक्षेप और नो-आगम-भावनिक्षेप।

अब आवश्यक पर चारों निक्षेपों को उतारते हैं- आवश्यक याने जो अवश्य करने के योग्य हो, अथवा मर्यादा सहित समस्त प्रकार से आत्मा को ज्ञानादि गुणों द्वारा वश करना, या गुणशून्य आत्मा को समस्त प्रकार से गुणों में निवास कराना वह आवश्यक है। इस के चार भेद होते हैं-१ नामावश्यक, २ स्थापना-वश्यक, ३ द्रव्यावश्यक और ४ भावावश्यक।

१ नामावश्यक–किसी एक जीव का या एक अजीव का तथा बहुत से जीवों का या बहुत से अजीवों का, तथा एक जीवाजीव का या बहुत से जीवाजीव का आवश्यक ऐसा नाम नियत करना उस को नामावश्यक कहते हैं।

२ स्थापनावश्यक–"जण्णं कट्ठकम्मे वा चित्तकम्मे वा पोत्थकम्मे वा लेप्पकम्मे वा गंथिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अक्खे वा वराडए वा एगो वा अणेगो वा सब्भावठवणा वा असब्भावठवणा वा आवस्सए त्ति ठवणा ठविज्जइ, सेत्तं ठवणावस्सयं" (अनुयोगद्वा०सू० १०) अर्थ–जो क० काष्ठ से निपजाया हुआ रूप, चि० चित्रलिखित रूप, पोत्थ० वस्त्र से निपजाया हुआ रूप जैसे लड़कियों के बनाए हुए गुलाइयों (गुड़िया) के रूप, अथवा संपुटक रूप पुस्तक में वर्त्तिकालिखित रूप, अथवा ताड़पत्रादिकों को काट (कोर) कर के बनाया हुआ रूप, लेप्प० मृत्तिकादि से बनाया हुआ लेप्य रूप, गं० अत्यन्त कारीगरी कर के गोंठ से निपजाया हुआ रूप, वे० पुष्पवेष्टन क्रम से निपजाया हुआ आनन्दपुरादि में प्रसिद्ध रूप, अथवा जैसे कोई एक दो आदि वस्त्रों को वींटता हुआ किसी रूप (आकार) को बनावे, पू० पित्तल आदि धातु की ढाली हुई

प्रतिमा का रूप, सं० बहुत से वस्त्रादिकों के टुकड़ों को सांध कर बनाया हुआ रूप जैसे कञ्चुकी, अक्ख-ए० चन्दन के पासों का रूप, व० कोड़ियों का रूप। इन काष्ठकर्म आदि दशों के विषय में आवश्यक क्रिया युक्त साधु का एक अथवा अनेक, सद्भाव- (काष्ठकर्मादिकों के विषय यथार्थ आकार) अथवा असद्भाव- (चन्दन कौड़ादिकों के विषय आकार रहित) स्थापना करे वह स्थापनावश्यक है। इन नाम और स्थापना में क्या विशेष है ? उत्तर- नाम तो यावत्कथिक (अपने आश्रय द्रव्य की अस्तित्व कथा पर्यन्त रहने वाला) होता है और स्थापना इत्वरा (थोड़े काल तक रहने वाली) और यावत्कथिका (अपने आश्रय द्रव्य की सत्तापर्यन्त रहने वाली) दोनों तरह की होती है।

३ द्रव्यावश्यक के दो भेद होते हैं—आगमतो द्रव्यावश्यक और नोआगमतो द्रव्यावश्यक। आगमतो द्रव्यावश्यक-"जस्सणं आवस्सए त्ति पदं सिक्खितं १, ठितं २, जितं ३, मितं ४, परिजितं ५, नामसमं ६, घोससमं ७, अहीणक्खरं ८, अणच्चक्खरं ९, अव्वाइद्धक्खरं १०, अक्खलिअं ११, अमिलिअं १२, अवच्चामेलिअं १३, पडिपुण्णं १४, पडिपुण्णघोसं १५, कंठोट्ठविप्पमुक्कं १६, गुरुवायणोवगयं १७, सेणं तत्थ वायणाए

१८, पुच्छणाए १९, परिअट्टणाए २०, धम्मकहाए २१, नो अणुपेहाए, कम्हा? "अणुवओगो दव्व" मिति कट्टु ।
(अनुयोगद्वार०सूत्र १३) अब इस सूत्र का अर्थ लिखते हैं—
जस्स० जिस किसी ने आवश्यक ऐसा पद (शास्त्र) शुद्ध सीखा है १, ठि० स्थिर किया है २, जि० पूछने पर शीघ्र उत्तर दिया है ३, मि० पद अक्षर की संख्या का सम्यक् प्रकार जानपना किया है ४, परि० आदि से अन्त तक और अन्त से आदि तक पढ़ा है ५, नाम० अपना नामसदृश पक्का किया है याने भूले नहीं ६, घोस० उदात्तानुदात्तादि घोषसहित ७, अहीण० अक्षर बिन्दु मात्रा हीन नहीं ८, अण० अक्षर बिन्दु मात्रा अधिक नहीं ९, अव्वा० अधिक अक्षर तथा उलट पलट न बोले १०, अक्ख० अस्खलित उच्चारण याने बोलते समय अटके नहीं ११, अमि० मिलेहुए (संदिग्ध) अक्षर नहीं १२, अवचा० एक पाठ को बारंबार बोले नहीं अथवा सूत्रसदृश पाठ अपने मन से बनाकर सूत्र में बोले नहीं, अथवा एक सूत्र के सरीखे पाठ को सूत्रमध्ये पढ़ा कर बोले नहीं १३, पडि० काना मात्र आदि परिपूर्ण बोले १४, पडि० घोसं० काना मात्र आदि परिपूर्ण घोष कर के सहित १५, कंठो० कंठ ओष्ठ से न मिला हुआ याने स्फुट प्रकट १६,

१६, गुरु० गुरु की दी हुई वाचना कर के पढ़ा है १७, फिर वह पुरुष वहां वा० दूसरे को वाचना देता है १८, पु० प्रश्न पूछता है १९, परि० वारवार याद करता है-२०, धम्म० उपदेश देता है २१, अर्थात् इन इकीस बोलों से तो सहित है, परन्तु उस में उपयोग नहीं है तो उसको आगम से द्रव्यावश्यक कहते हैं, क्योंकि जो उपयोग रहित होता है वह द्रव्यावश्यक कहा जाता है।

अब इस पर सात नयों को उतारते हैं- नैगम नय के अभिप्राय से एक पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करे उस को आगम से एक द्रव्यावश्यक कहते हैं, दो पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें उस को आगम से दो द्रव्यावश्यक कहते हैं और तीन पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें उस को आगम से तीन द्रव्यावश्यक कहते हैं, इस प्रकार जितने पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें उतने ही को आगम से द्रव्यावश्यक कहते हैं। व्यवहार नय वाले का भी यही अभिप्राय है। संग्रह नय के अभिप्राय से एक पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें अथवा बहुत से पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें उन सब को आगम से एक द्रव्यावश्यक कहते हैं। ऋजुसूत्र नय के अभि-

१८, पुच्छणाए १९, परिअट्टणाए २०, धम्मकहाए२१, नो अणुपेहाए, कम्हा?" अणुवओगो दव्व" मिति कट्टु। (अनुयोगद्वार०सूत्र१३) अब इस सूत्र का अर्थ लिखते हैं- जस्स० जिस किसी ने आवश्यक ऐसा पद (शास्त्र) शुद्ध सीखा है१, ठि० स्थिर किया है२, जि० पूछने पर शीघ्र उत्तर दिया है३, मि० पद अक्षर की संख्या का सम्यक् प्रकार जानपना किया है ४, परि० आदि से अन्त तक और अन्त से आदि तक पढ़ा है ५, नाम० अपना नामसदृश पक्का किया है याने भूले नहीं ६, घोस० उदात्तानुदात्तादि घोषसहित ७, अहीणा० अक्षर बिन्दु मात्रा हीन नहीं ८, अण० अक्षर बिन्दु मात्रा अधिक नहीं ९, अव्वा० अधिक अक्षर तथा उलट पलट न बोले १०, अक्ख० अस्खलित उच्चारण याने बोलते समय अटके नहीं ११, अमि० मिलेहुए (संदिग्ध) अक्षर नहीं १२, अवचा० एक पाठ को वारंवार बोले नहीं अथवा सूत्रसदृश पाठ अपने मत से बनाकर सूत्र में बोले नहीं, अथवा एक सूत्र के सरीखे पाठ को सूत्रमध्ये बढ़ा कर बोले नहीं १३, पडि० काना मात्र आदि परिपूर्ण बोले १४, पडि० घोसं० काना मात्र आदि परिपूर्ण घोष कर के सहित १५, कंठो० कंठ ओष्ट से न मिला हुआ याने स्फुट प्रकट १६,

१६, गुरु० गुरु की दी हुई वाचना कर के पढ़ा है १७, फिर वह पुरुष वहां वा० दूसरे को वाचना देता है १८, पु० प्रश्न पूछता है १९, परि० बारबार याद करता है-२०, धम्म० उपदेश देता है २१, अर्थात् इन इकीस बोलों से तो सहित है, परन्तु उस में उपयोग नहीं है तो उसको आगम से द्रव्यावश्यक कहते हैं, क्योंकि जो उपयोग रहित होता है वह द्रव्यावश्यक कहा जाता है।

अब इस पर सात नयों को उतारते हैं- नैगम नय के अभिप्राय से एक पुरुष उपयोग रहित आव-श्यक करे उस को आगम से एक द्रव्यावश्यक कहते हैं, दो पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें उस को आगम से दो द्रव्यावश्यक कहते हैं और तीन पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें उस को आगम से तीन द्रव्यावश्यक कहते हैं, इस प्रकार जितने पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें उतने ही को आगम से द्रव्या-वश्यक कहते हैं। व्यवहार नय वाले का भी यही अभिप्राय है। संग्रह नय के अभिप्राय से एक पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करे अथवा बहुत से पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें उन सब को आगम से एक द्रव्यावश्यक कहते हैं। ऋजुसूत्र नय के अभि-

प्राय से एक पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करे उस को आगम से एक द्रव्यावश्यक कहते हैं परन्तु पृथक् (जुदेजुदे) उपयोग रहित आवश्यक करने वालों को इस नय वाला आगम से द्रव्यावश्यक नहीं मानता है क्योंकि इस (ऋजुसूत्र) नय वाला अतीत और अनागत काल को छोड़ कर केवल वर्त्तमान काल को मुख्य रख कर उपयोग रहित अपने ही आवश्यक को आगम से एक द्रव्यावश्यक मानता है, जैसे स्वधन (अपना धन)। शब्दादि तीन नय वाले- जो आवश्यक का जानकार है और उपयोग रहित है उस को वस्तु (आवश्यक) नहीं मानते हैं क्योंकि जो जानकार है वह उपयोग रहित नहीं होता और जो उपयोग रहित है वह जानकार नहीं हो सकता, इसलिए इस को शब्दादि तीन नय वाले आगम से द्रव्यावश्यक ही नहीं मानते हैं।

नोआगम से द्रव्यावश्यक के तीन भेद हैं- १ जानकशरीर (ज्ञशरीर) द्रव्यावश्यक, २ भव्यशरीर द्रव्यावश्यक और ३ जानकशरीर-भव्यशरीर-तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक।

१ जानकशरीर नोआगम से द्रव्यावश्यक- जैसे कोई पुरुष आवश्यक इस सूत्र के अर्थ का जानकार

था और वह कालप्राप्त होगया, उस के मृतक शरीर को भूमि पर अथवा संथारे पर लेटा हुआ देख कर किसी ने कहा कि वह इस शरीर द्वारा जिनोपदिष्ट भाव से आवश्यक इस सूत्र का अर्थ सामान्य प्रकार से प्ररूपता था, विशेष प्रकार से प्ररूपता था, समस्त प्रकार भेदाभेद द्वारा प्ररूपता था तथा क्रिया विधि द्वारा सम्यक् प्रकार दिखलाता था, जैसे शहद के घड़े को तथा घी के घड़े को देख कर कोई कहे कि यह शहद का घड़ा तथा घी का घड़ा था।

२ भव्यशरीर नोआगम से द्रव्यावश्यक– जैसे किसी श्रावक के घर पर लड़के का जन्म हुआ उस वक्त उस को देख कर कोई कहे कि इस लड़के की आत्मा इस शरीर से जिनोपदिष्ट भाव द्वारा आवश्यक इस सूत्र के अर्थ का जानकार भविष्यत् काल में (आयंदा) होगा, जैसे नये घड़े को देख कर कोई कहे कि यह शहद का घड़ा तथा घी का घड़ा होगा।

३ जानकशरीर-भव्यशरीर-तद्व्यतिरिक्त नो आगम से द्रव्यावश्यक के तीन भेद होते हैं– १ लौकिक, २ कुप्रावचनिक और ३ लोकोत्तर। लौकिक-जानक शरीर-भव्यशरीर- तद्व्यतिरिक्त- नोआगम से द्रव्यावश्यक यह है जो कोई राजेश्वर तलवर माडम्बिक कौटुम्बिक

इभ्य श्रेष्ठी सेनापति सार्थवाह इत्यादिकों का प्रभात पहले यावत् जाज्वल्यमान सूर्योदय के वक्त मुख धोना दाँत प्रक्षालना तेल लगाना स्नान-मज्जन करना सर्षप दूब आदि माङ्गलिक उपचारों का करना आरीसे में मुख देखना धूप पुष्पमाला-सुगन्ध ताम्बूल वस्त्र आ-भूषण आदि सब वस्तुओं द्वारा शरीर का शृङ्गार करना इत्यादि करने बाद राजसभा में पर्वतों में या बाग बगीचे आदि में नित्य प्रति अवश्यमेव जाना। इति लौकिक जानकशरीर- भव्यशरीर- तद्व्यतिरिक्त-नो आगम से द्रव्यावश्यक है।

कुप्रावचनिक जानकशरीर- भव्यशरीर- तद्व्यतिरिक्त- नोआगम से द्रव्यावश्यक- जो "चरग १ चीरिग२ चम्मखण्डिअ३ भिक्खोंड४ पंडुरंग५ गोअमद् गोव्वतिअ७ गिहिधम्म ८ धम्मचिंतग ९ अविरुद्ध१० विरुद्ध११वुड्ढ १२ सावग१३ प्पभितिओ पासंडत्था कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते इंदस्स वा खंदस्स वा रुद्दस्स वा सिवस्स वा वेसमणस्स वा देवस्स वा नागस्स वा जक्खस्स वा भूअस्स वा मुगुंदस्स वा अज्जाए वा दुग्गाए वा कोट्टकिरियाए वा उवलेवण-संमज्जण-आवरिसण-धूव-पुप्फ-गंध-मल्लाइआइं दव्वा-वस्सयाइं करेंति, सेत्तं कुप्पावयणियं दव्वावस्सयं।"

(श्री अनुयोग द्वार सूत्र सूत्र. २०) अर्थ—घ० खातेहुए फिरने वाले१, चो० रास्ते में पड़े हुए चींथरों को पहनने वाले२, चम्म० चर्म को पहनने वाले३, भि० भिक्षा माँगकर खानेवाले४, पडु० शरीर पर भस्म लगाने वाले५, गो० बैल को रमाकर आजीविका करने वाले ६, गो० गाय की वृत्ति से चलने वाले७, गि० गृहस्थ धर्म को ही कल्याणकारी मानने वाले८, धम्म० यज्ञादि धर्म की चिन्ता करने वाले९, अवि० विनयवादी१०, वि० नास्तिकवादी ११, वु० तापस१२, सा० ब्राह्मण प्रमुख १३ पा० पाखण्डमार्ग में चलने वाले, इत्यादिकों का कल्लं० कल पाउ० प्रभात पहले यावत् जाज्वल्यमान सूर्योदय के होते हुए इ० इन्द्र के स्थान पर, खं० स्कन्द (कार्त्तिकेय) देव के स्थान पर, रु० महादेव के स्थान पर, शि० व्यन्तर विशेष के स्थान पर, वे० वैश्रमण के स्थान पर, दे० सामान्य देव के स्थान पर, ना० नागदेव के स्थान पर ज० व्यन्तर विशेष के स्थान पर भू० भूतों के स्थान पर मु० बलदेव के स्थान पर अ० आर्या—प्रशान्तरूप देवी के स्थान पर दु० महिषारूढ़ देवी के स्थानपर को० कोटक्रिया देवी के स्थान पर गोबर आदि से लीपना संमार्जन करना सुगन्ध जल छिड़कना धूप देना पुष्प चढ़ाना गन्ध देना सुगन्ध

माल्य का पहिनाना इति कुप्रावचनिक जानक-शरीर-भव्यशरीर-तद्व्यतिरिक्त-नो आगम से द्रव्यावश्यक।

लोकोत्तर जानकशरीर भव्यशरीर तद्व्यतिरिक्त नो आगम से द्रव्यावश्यक-"जे इमे समणगुणमुक्कजोगी छक्कायनिरणुकंपा हया इव उद्दामा गया इव निरंकुसा घट्टा मट्ठा तुप्पोट्ठा पंडुरपडपाउरणा जिणाणमणाणाए सच्छंदं विहरिऊणं उभओ कालं आवस्सयस्स उवट्ठंति, से तं लोगुत्तरिअं दव्वावस्सयं।" अर्थ-जे० जो ये साधु के सत्ताईस गुण और शुभ योग कर के रहित. छ० षट्काय की अनुकंपा से रहित ह० विना लगाम के घोड़े की तरह उतावले चलने वाले. ग० अंकुशरहित हस्तिवत् मदोन्मत्त. घ० फेनादि किसी द्रव्य से सुहाली करने के लिए जंघों को घसने वाले छे० तेल जलादि से शरीर और केशों को सम्हारने वाले. तु० होठों के मालिश करने वाले अथवा शीतरक्षादि के लिए मदन (मोण) से होठों को वेष्टित करने वाले. पंडु० धोये हुए सफेद वस्त्रों को पहिननेवाले. जि० तीर्थंकरों की आज्ञा से बाहिर. स० स्वच्छंद मति से विचरने वाले जो दोनों वक्त आवश्यक करते हैं। इति लोकोत्तर-जानक शरीर-भव्य शरीर-तद्व्यतिरिक्त नोआगम से द्रव्यावश्यक। इति द्रव्यावश्यक।

भावावश्यक के दो भेद हैं – १ आगम से भावा-वश्यक और २ नोआगम से भावावश्यक।

आगम से भावावश्यक – जिसने आवश्यक इस सूत्र के अर्थ का ज्ञान किया है और उपयोग कर के सहित है उस को आगम से भावावश्यक कहते हैं। नोआगम से भावावश्यक के तीन भेद होते हैं – १ लौकिक नोआगम से भावावश्यक २ कुप्रावचनिक नोआगम से भावावश्यक और ३ लोकोत्तर नोआगम से भावावश्यक।

लौकिक नोआगम से भावावश्यक–जो लोग पूर्वाह्न – प्रभात समय – उपयोग सहित भारत और अपराह्न-दुपहर पीछे–उपयोग सहित रामायण को बांचे तथा श्रवण करे उसको लौकिक नोआगम से भावावश्यक कहते हैं।

कुप्रावचनिक नोआगम से भावावश्यक–जो ये पूर्वोक्त चरक चीरिक यावत् पाखंड मार्ग में चलने वाले यथावसर " इज्जंजलिहोमजपोन्दुरुक्कनमोक्कारमाइ- आइं भावावस्सयाइं करेंति से तं कुप्पावयणिअं भावावस्सयं " इ० यज्ञ विषय जलांजलि का देना अथवा संध्याऽर्चनसमय जलांजलि का देना, अथवा देवों के सन्मुख हाथ जोड़ना, हो ॰ अग्निहवन का

करना ; ज० मंत्रादि का जप करना ; उन्द्रु० देवतादि के सन्मुख वृषभवत् गर्जितशब्द करना नमो० "नमो भगवते दिवसनाथाय" इत्यादि नमस्कार का करना ; ये पूर्वोक्त कृत्य जो भाव से उपयोगसहित करें उस को कुप्रावचनिक नोआगम से भावावश्यक कहते हैं, इति कुप्रावचनिक नोआगम से भावावश्यक।

लोकोत्तर नोआगम से भावावश्यक— "जण्णं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पिअकरणे तब्भावणाभाविए अण्णत्थ कत्थइ मणं अकरेमाणे उभओकालं आवस्सयं करेंति, सेतं लोगुत्तरियं भावावस्सयं" । ज० जो ये स० शांत स्वभाव रखने वाले साधु, स० साध्वी सा० साधु के समीप जिनप्रणीत समाचारी को सुनने वाले श्रावक, सा० श्राविका, तच्चित्ते० उसी आवश्यक में सामान्य प्रकार से उपयोग सहित चित्त को रखने वाले, तम्मणे० उसी आवश्यक में विशेष प्रकार से उपयोग सहित मन को रखने वाले, तल्लेसे० उसी आवश्यक में शुभ परिणाम रूप लेश्या वाले, तद० तच्चित्तादिभावयुक्त उसी आवश्यक की विधिपूर्वक क्रिया करने के अध्यवसाय वाले, तत्तिव्व० उसी

आवश्यक में प्रारंभ काल से लेकर प्रतिक्षण चढ़ते २ प्रयत्नविशेष अध्यवसाय के रखने वाले, तदट्ठो० उसी आवश्यक के अर्थ के विषे उपयोग सहित अर्थात् तीव्रतर वैराग्य के रखने वाले, तद्दप्पि० उसी आवश्यक में सब इन्द्रियों (इन्द्रियों के व्यापार) को लगाने वाले, तब्भा० उसी आवश्यक के विषे अव्यवच्छिन्न उपयोग सहित अनुष्ठान से उत्कृष्ट भाव द्वारा परिणत ऐसे आवश्यक के परिणाम रखने वाले, अण्णत्थ० उसी आवश्यक के सिवाय अन्यत्र किसी भी स्थान पर मन वचन और काया के योगों को न करते हुए चित्त को एकाग्र रखने वाले, दोनों वक्त उपयोग सहित आवश्यक करें उसको लोकोत्तर नोआगम से भावावश्यक कहते हैं। इति लोकोत्तर नोआगम से भावावश्यक।

अथ आवश्यक के एकार्थिक नाम कहते हैं—

१ आवस्सयं—२ अवस्संकरणिज्जं ३ धुवनिग्गहो ४ विसोही य।

५ अज्झयण छक्कवग्गो, ६ नाओ ७ आराहणा ८ मग्गो ॥ १ ॥

समणेणं सावएण य, अवस्स कायव्वयं हवइ जम्हा।

अंतो अहोनिसस्सय, तम्हा आवस्सयं नाम ॥ २ ॥

आव० जो साधु आदिकों के अवश्य करने योग्य हो उसको आवश्यक कहते हैं, अथवा जिस के द्वारा ज्ञानादिक गुण तथा मोक्ष समस्त प्रकार से वश (स्वाधीन) किया जावे उसको आवश्यक कहते हैं, अथवा समस्त प्रकार से इंद्रिय कषाय आदि भाव शत्रुओं को वश करने वालों से जो किया जावे उसको आवश्यक कहते हैं, अथवा जो समग्र गुण–ग्रामों का स्थानभूत हो उसको आवासक (आवश्यक) कहते हैं, इत्यादि और भी दूसरे अर्थ अपनी बुद्धि से जान लेना चाहिये। अव० मोक्षार्थी पुरुषों के जो नियम से अनुष्ठान करने योग्य हो उसे अवश्यंकरणीय कहते हैं २। ध्रुव० अनाद्यनंत कर्मों का तथा उस के फलभूत संसार का निग्रह हेतु होने के कारण उस को ध्रुवनिग्रह कहते हैं ३। वि० कर्मों से मलिन आत्मा को विशुद्धि करने का कारण होने से उस को, विशुद्धि कहते हैं ४। अज्झ० सामायिकादि छह अध्ययनों का समूह रूप होने से उस को अध्ययनषड्वर्ग कहते हैं ५॥ नाओ० अभीष्ट अर्थ की सिद्धि का सचा उपाय होने से उस को न्याय कहते हैं, अथवा जीव और कर्मों के सम्बन्ध (अनादि कालका झगड़ा) को मिटाने वाला होनेके कारण उसको न्याय कहते हैं ६। आरा० मोक्ष की आराधना

का कारण होने से उस को आराधना कहते हैं ७। मग्गो० मोक्ष रूप नगर में पहुँचाने वाला होने से उस को मार्ग कहते हैं ८। साधु और साध्वी श्रावक और श्राविकाओं से रात और दिन की संधि में यह अवश्य किया जाता है,इसलिए इस को आवश्यक कहते हैं।

३ द्रव्यगुण-पर्याय-द्वार

द्रव्य—"गुणपर्यायवद्द्रव्यम्" इति (तत्वार्थसूत्र अध्याय ५, सूत्र ३८) वचनात् जो गुणों के समूह और पर्याय से युक्त हो उसको द्रव्य कहते हैं।

गुण—"सहभाविनो गुणाः" इति वचनात्, द्रव्य के पूरे हिस्से में और उस की सब हालतों में रहे उसको गुण कहते हैं।

पर्याय— "गुणविकाराः पर्यायाः" इति वचनात् गुणों के विकार को पर्याय कहते हैं, अथवा "क्रमवर्तिनः पर्यायाः" इति वचनात् जो क्रमसे बदलती रहे उस को पर्याय कहते हैं।

द्रव्य के दो भेद हैं— १ जीव द्रव्य और २ अजीव द्रव्य। गुण के अनेक भेद हैं, परन्तु मुख्यतया जीव

के गुण ज्ञानादि और पुद्गल के गुण वर्णादि हैं।

पर्याय के दो भेद हैं—१ आत्मभावी पर्याय, जैसे जीव की ज्ञान दर्शन चारित्र रूप पर्याय, २ दूसरी कर्मभावी पर्याय-जैसे जीव चार गति चौवीस दंडक, चौरासी लाख जीवयोनि में गमनागमन द्वारा अनेक प्रकार की पर्यायों को धारण करे।

अब प्रकारान्तर से द्रव्य गुण पर्याय के भेद कहते हैं – द्रव्य तो छह प्रकार का है – १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ये तीन तो एक एक द्रव्य हैं। ४ जीवास्तिकाय, ५ पुद्गलास्तिकाय और ६ काल द्रव्य, ये तीन अनन्त द्रव्य हैं।

इन के गुण कहते हैं — (१) धर्मास्तिकाय के ४ गुण हैं — १ अरूपित्व २ अचेतनत्व ३ अक्रियत्व और ४ चौथा गतिसहायकत्व गुण है। (२) अधर्मास्तिकाय के भी ४ गुण हैं, जिन में तीन तो पूर्वोक्त और चौथा स्थितिसहायकता गुण है। (३) आकाशास्तिकाय के भी चार गुण हैं, जिन में तीन तो वे ही पूर्वोक्त और चौथा अवगाहनदानत्व गुण है। (४) जीव द्रव्य के भी चार गुण हैं – १ अनन्त ज्ञान, २ अनन्त दर्शन, ३ अनन्त चारित्र और ४ अनन्त वीर्य। (५) पुद्गल द्रव्य के भी चार गुण हैं – १ रूपित्व, २ अचे-

तनत्व, ३ संक्रियत्व और चौथा मिलन विखरन रूप पूरनगलन गुण है। (६) कालद्रव्य के भी चार गुण हैं— १ अरूपित्व, २ अचेतनत्व, ३ अक्रियत्व और चौथा नया पुराना वर्त्तनालक्षण गुण है।

इन में प्रत्येक की पर्यायें चार चार होती हैं— १धर्मास्तिकाय की चार पर्यायें—१स्कन्ध, २देश, ३प्रदेश और ४अगुरुलघु। २अधर्मास्तिकाय और ३आकाशास्तिकाय की भी ये ही चार चार पर्यायें होती हैं। ४जीव द्रव्य की चार पर्यायें—१अव्याबाध, २अवगाह, ३ अमूर्त्त और ४ अगुरुलघु। ५पुद्गल द्रव्य की चार पर्यायें— १वर्ण, २गन्ध, ३रस, और ४स्पर्श अगुरुलघु सहित। ६ काल द्रव्य की चार पर्यायें —१अतीत, २अनागत, ३वर्त्तमान और ४अगुरुलघु।

फिर अन्य प्रकार से द्रव्य गुण पर्याय के भेद कहते हैं—द्रव्य तो पूर्वोक्त छह प्रकार का है। गुण दो प्रकार का है- सामान्य और विशेष।

१—मुख्यपन से जीव की ये चार पर्यायें बतलाई हैं लेकिन और भी अनन्त पर्यायें होती हैं, क्योंकि भगवती श. २ उ. १ खंधकजी के अधिकार में "अणंता णाणपज्जवा" इत्यादि अनन्त २ पर्यायें कही हैं। तथा प्रज्ञापना सूत्र के ५ वें पर्याय पद में भी जीव के ज्ञानादि की अनन्त पर्यायें कथन की गई हैं।

सामान्य गुण दश प्रकार का होता है- १अस्तित्व, २वस्तुत्व, ३द्रव्यत्व, ४प्रमेयत्व, ५अगुरुलघु, ६प्रदेशत्व, ७चेतनत्व, ८अचेतनत्व, ९मूर्त्तत्व, और १०अमूर्त्तत्व। इन के लक्षण- १अस्ति (है) ऐसा जो भाव हो उस को अस्तित्व याने सद्रूपत्व कहते हैं। २सामान्य विशेषात्मक वस्तु के भाव को वस्तुत्व कहते हैं। ३द्रव्य के स्वभाव को अर्थात् अपने अपने प्रदेश के समूहों से अखण्डवृत्ति द्वारा स्वभाव विभाव पर्यायों को वर्त्तमान में प्राप्त होता है भविष्यत् में प्राप्त होगा और भूत काल में प्राप्त हुआ था ऐसा जो द्रव्य का स्वभाव उस को द्रव्यत्व कहते हैं। ४प्रमाण द्वारा जिसका स्वपर स्वरूप जाना जावे वह प्रमेय है, उस के भाव को प्रमेयत्व कहते हैं। ५सूक्ष्म, वाणी के अगोचर, प्रतिक्षण वर्त्तमान रहे और आगम प्रमाण से माना जावे, ऐसा जो गुण है उस को अगुरुलघु कहते हैं। ६प्रदेश के भाव (अविभागी पुद्गल परमाणु से व्याप्त) को प्रदेशत्व कहते हैं। ७चेतन के भाव को चेतनत्व (चैतन्य) कहते हैं। ८अचेतन के भाव को अचेतनत्व (अचैतन्य) कहते हैं। ९ जो रूप रस गन्ध और स्पर्श से सहित है वह मूर्त्त है, उस के भाव को मूर्त्तत्व कहते हैं। १० जो रूप रस गन्ध और स्पर्श से रहित है वह

अमूर्त्त है, उस के भाव को अमूर्त्तत्व कहते हैं।

धर्मास्तिकायादि छह द्रव्यों में से एक एक द्रव्य में पूर्वोक्त इन दश सामान्य गुणों में के आठ आठ गुण पाये जाते हैं, जैसे-१जीव द्रव्य में अचेतनत्व और मूर्त्तत्व ये दो गुण नहीं हैं, शेष आठ गुण (१अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ अगुरुलघु, ६ प्रदेशत्व, ७चेतनत्व, ८अमूर्त्तत्व) पाये जाते हैं। २ पुद्गल द्रव्य में चेतनत्व और अमूर्त्तत्व ये दो गुण नहीं हैं, शेष आठ गुण(१अस्तित्व, २वस्तुत्व, ३द्रव्यत्व, ४प्रमेयत्व, ५अगुरुलघु, ६प्रदेशत्व, ७अचेतनत्व, ८मूर्त्तत्व,)पायेजाते हैं। ३-६ धर्म अधर्म आकाश और काल इन चार द्रव्यों में चेतनत्व और मूर्त्तत्व ये दो गुण नहीं हैं, शेष आठ गुण (१ अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ अगुरुलघु, ६ प्रदेशत्व, ७अचेतनत्व, ८अमूर्त्तत्व) पाये जाते हैं। इस प्रकार दश गुणों में से दो दो गुण वर्ज कर शेष आठ आठ गुण प्रत्येक द्रव्य में पाये जाते हैं।

विशेष गुण सोलह प्रकार का होता है- १ज्ञान, २दर्शन, ३सुख, ४वीर्य, ५स्पर्श, ६रस, ७गन्ध, ८वर्ण, ९गतिहेतुत्व, १०स्थितिहेतुत्व, ११अवगाहनहेतुत्व, १२वर्त्तनाहेतुत्व, १३चेतनत्व, १४अचेतनत्व, १५मू-

त्तत्व, और १६अमूर्त्तत्व। इन का अर्थ इन्हीं शब्दों से ही स्पष्ट है इसलिए यहां विस्तार नहीं किया है। इन सोलह विशेष गुणों में अन्त के चार गुण स्वजाति की अपेक्षा से सामान्य और विजाति की अपेक्षा से विशेष हैं।

इन सोलह गुणों में से जीव और अजीव (पुद्गल) में छह छह गुण पाये जाते हैं, जैसे-१ जीव में-(१) ज्ञान, (२) दर्शन, (३) सुख, (४) वीर्य, (५) चेतनत्व और (६) अमूर्त्तत्व। २ अजीव (पुद्गल) में- (१) स्पर्श, (२) रस, (३) गन्ध, (४) वर्ण, (५) मूर्त्तत्व और (६) अचेतनत्व। धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य, इन चारों में तीन तीन गुण पाये जाते हैं वे इस प्रकार-हैं ३, धर्म द्रव्य में-गतिहेतुत्व, अचेतनत्व और अमूर्त्तत्व। ४ अधर्मद्रव्य में-स्थितिहेतुत्व, अचेतनत्व और अमूर्त्तत्व ५ आकाश-द्रव्य में- अवगाहनदानत्व, अचेतनत्व और अमूर्त्तत्व। ६ काल-द्रव्य में- वर्त्तनाहेतुत्व, अचेतनत्व और अमूर्त्तत्व।

अब पर्याय का स्वरूप कहते हैं—गुण के विकार को पर्याय कहते हैं। इस के दो भेद हैं- स्वभावपर्याय और विभावपर्याय। अगुरुलघु के विकार को स्वभाव

पर्याय कहते हैं, वह बारह प्रकार की होती है– छह वृद्धि रूप और छह हानिरूप। प्रथम वृद्धिरूप के छह भेद दिखाते हैं–१ अनन्तभाग वृद्धि २असंख्यात भागवृद्धि, ३ संख्यातभागवृद्धि, ४संख्यातगुणवृद्धि, ५असंख्यातगुणवृद्धि, ६अनन्तगुणवृद्धि। अब हानिरूप के छह भेद दिखाते हैं-- १ अनन्तभागहानि, २ असंख्यातभागहानि, ३ संख्यातभागहानि, ४संख्यातगुणहानि, ५ असंख्यातगुणहानि, ६ अनन्तगुणहानि। यह स्वभाव पर्याय छहों द्रव्यों में पाई जाती है।

विभावपर्याय चार प्रकार की होती है, वह जीव और पुद्गल दो ही द्रव्यों में पाई जाती है, शेष चार द्रव्यों में नहीं। जीव द्रव्य के आश्रय विभावपर्याय इस प्रकार है– १ विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्याय–नरनारकादि पर्याय, अथवा चौरासी लाख जीवयोनि पर्याय। २ विभावगुणव्यञ्जन-पर्याय– मत्यादि चार ज्ञान। ३ स्वभावद्रव्यव्यञ्जन- पर्याय– जैसे चरमशरीर से किञ्चित् न्यून सिद्धपर्याय है। ४ स्वभावगुणव्यञ्जनपर्याय– अनन्तचतुष्टयस्वरूप। पुद्गल द्रव्य के आश्रय से भावपर्याय इस प्रकार है– १ विभावद्रव्यव्यञ्जन य– द्वयणुकादि स्कन्ध। २ विभावगुणव्यञ्जन

पर्याय- रस से रसान्तर और गन्ध से गन्धान्तर आदि। ३ स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्याय- अविभागी परमाणु- पुद्गल। ४ स्वभावगुणव्यञ्जन पर्याय- एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श।

४ द्रव्य- क्षेत्र- काल- भाव द्वार.

(द्रव्य.)

जगत् में जो पदार्थ अपनी पर्याय को प्राप्त होता रहे उसे द्रव्य कहते हैं, क्योंकि गुण और पर्याय से युक्त ही द्रव्य माना गया है। द्रव्य के धर्मास्तिकायादि छह भेद हैं।

(क्षेत्र—आकाश)

जो वस्तु जितने आकाश प्रदेशों को अवगाहे (रोके) उस को क्षेत्र (स्थानविशेष) कहते हैं। इस के मुख्य दो भेद हैं- लोकाकाश और अलोकाकाश लोकाकाश के तीन भेद हैं- अधोलोक (नीचालोक) तिर्यग्लोक (तिरछालोक) और ऊर्ध्वलोक (ऊंचा लोक) अधोलोक के सात भेद- १ रत्नप्रभा पृथिवी अधोलोक २ शर्कराप्रभा पृथिवी अधोलोक, ३ वालुकाप्रभा पृथिवी अधोलोक, ४ पङ्कप्रभा पृथिवी अधोलोक, ५ धूमप्रभा

पृथिवी अधोलोक, ६तमःप्रभा पृथिवी अधोलोक, और ७तमस्तमःप्रभा पृथिवी अधोलोक। तिर्यग्लोक के जम्बू द्वीप और लवणसमुद्र से यावत् स्वयम्भूरमण द्वीप और स्वयम्भूरमण समुद्र तक जितने असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, उतने ही तिर्यग्लोक के भेद हैं। ऊर्ध्वलोक के पन्द्रह भेद—१सुधर्म देवलोक से लेकर यावत् १२ वाँ अच्युत देवलोक, १३ वाँ नवग्रैवेयक, १४ वाँ पांच अनुत्तर विमान और १५ वाँ ईषत्प्राग्भारा पृथिवी, ये पन्द्रह भेद हुए।

(काल.)

जिस के द्वारा वस्तुओं की नूतन वा पुरातन पर्याय उत्पन्न होती हो उसी का नाम काल है, इस के अनेक भेद हैं -- १ समय, २ आवलिका, ३ उच्छ्वासनिःश्वास, ४ प्राण (एकश्वासोच्छ्वास), ५ स्तोक (सात प्राण), ६ लव (सात स्तोक), ७ मुहूर्त्त (७७ लव, अथवा ५३९ स्तोक, अथवा ३७७३ श्वासोच्छ्वास, अथवा १६७७७२१६ एक करोड़ सड़सठ लाख सतहत्तर हजार दो सौ सोलह आवलिका, अथवा दो घड़ी, अथवा ४८ मिनिट), ८ अहोरात्र (३१ मुहूर्त्त अथवा २४ घण्टे), ९ पक्ष (पन्द्रह अहोरात्र, १० मास (दो

पक्ष), ११ ऋतु (दो मास), १२ अयन (तीन ऋतु), १३ सँव्वत्सर (दो अयन), १४ युग (पांच सँव्वत्सर), १५ सौ वर्ष, १६ हजार वर्ष, १७ लाख वर्ष, १८ पूर्वाङ्ग (८४लाख वर्ष), १९ पूर्व (७०५६०००००००००० सत्तर लाख करोड़ वर्ष और छप्पन हजार करोड़ वर्ष), इस प्रकार प्रत्येक को चौरासी ८४ लाख से गुणा करने पर उत्तरोत्तर संख्या होती जाती है, जैसे – एक पूर्व को ८४ लाख से गुणा करने पर एक २० त्रुटिताङ्ग, और इस को ८४ लाख से गुणा करने से २१ त्रुटित होता है इसी तरह २२ अडडाङ्ग, २३ अडड, २४ अववाङ्ग, २५ अवव, २६ हूहूयांग, २७ हूहूय, २८ उत्पलाङ्ग, २९ उत्पल, ३० पद्माङ्ग, ३१ पद्म, ३२ नलिनाङ्ग, ३३ नलिन, ३४ अक्षनिपुराङ्ग, ३५ अक्षनिपुर, ३६ अयुताङ्ग, ३७ अयुत, ३८ नयुताङ्ग, ३९ नयुत, ४० प्रयुताङ्ग, ४१ प्रयुत, ४२ चूलिकाङ्ग, ४३ चूलिका, ४४ शीर्षप्रहेलिकाङ्ग, ४५ शीर्षप्रहेलिका (७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६ ९६४०६२१८९६८४८०८०१८३२९६ ०००००००००
०००००००००००००००००००००० ००००००००००
००००००००००००००००००००० ००००००००००
००००००००००००००००००००० ००००००००००

०००००००००००००००००००००००००००००००००००००
०००) होती है। तथा ४६ पल्योपम, ४७ सागरोपम, ४८ उत्सर्पिणी अवसर्पिणी, ४९ कालचक्र, ५० पुद्गलपरावर्त्तन, ५१ अतीतकाल, ५२ अनागत काल और ५३ सर्वकाल, इत्यादि अनेक भेद होते हैं।

(भाव.)

वस्तु के स्वभाव गुण और पर्याय को भाव कहते हैं, इसके छह भेद हैं– १ औदयिक, २ औपशमिक, ३ क्षायिक ४ क्षायोपशमिक, ५ पारिणामिक और ६ सान्निपातिक। इन का विस्तार अधिक है; इसलिए ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से यहां पर नहीं लिखते हैं, जिन विशेष जिज्ञासुओं को जानना हो, वे श्रीअनुयोगद्वार सूत्र छह नाम के अधिकार में से जान लेवें।

५ द्रव्य- भाव- द्वार.

(द्रव्य.)

जो प्राणी कार्य करता है परन्तु उसमें उस की चित्तवृत्ति लगी हुई न रहे अर्थात् शून्यउपयोग रहे, वस्तु के स्वरूप को जाने विना ही कार्य करता रहे

उस के लाभालाभ का खयाल नहीं करे उसका वह कार्य द्रव्य कहलाता है ।

(भाव.)

जिसने जो कार्य प्रारम्भ किया है, वह उस कार्य के द्रव्य क्षेत्र काल और भाव को जाने, होनान होना विचारे, कार्य की साधकता और बाधकता को जाने, उपयोग को मुख्य रखकर चले, और कार्य के फल को जाने, उस के कार्य को भाव कहते हैं ।

(अथ.)

अब इन द्रव्य और भाव पर भौंरे का दृष्टान्त कहते हैं, जैसे किसी भौंरे ने काष्ट को कोरा और उसकी कोरनी में " क " अक्षर कोरा गया किन्तु भौंरा नहीं जानता है कि मैंने "क" अक्षर कोरा है। उस " क " अक्षर का कर्त्ता द्रव्य से वह भौंरा है इसलिए उसके वह द्रव्य "क" कहलायगा और कोई पण्डित आकर उस "क" अक्षर की पर्याय को पहचाने और उसे "क" ऐसा कहे उस पण्डित के वह भाव "क" कहलायगा ।

---

६ कारण—कार्य द्वार.

(कारण .)

जिस के द्वारा कार्य नजदीक हो उसे कारण कहते हैं। अर्थात् कार्य के मूल को कारण कहते हैं।

(कार्य .)

जो कुछ करना प्रारम्भ किया उस के सम्पूर्ण होने से वह कार्य कहलाता है।

इन कारण कार्य पर दृष्टान्त कहते हैं, जैसे किसी पुरुष को रत्नाकर द्वीप जाना है और रास्ते में समुद्र आगया उस को तैरने के लिए जहाज में बैठना वह तो कारण है और रत्नाकर द्वीप पहुंचना वह कार्य है।

७ निश्चय--व्यवहार द्वार.

(निश्चय .)

वस्तु का निज स्वभाव – जो तीनों काल एक अवस्था में रहे – उस को निश्चय कहते हैं।

(व्यवहार .)

वस्तु की जो बाह्य प्रवृत्ति याने अवस्था का बदलना

तथा भेदाभेद द्वारा विवेचन करना, उस को व्यवहार कहते हैं।

इन दोनों पर दृष्टान्त कहते हैं, जैसे ढीला गुड़ व्यवहार से मीठा है, परन्तु निश्चय से उस में पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और आठ स्पर्श, ये बीस बोल पाये जाते हैं। इसी प्रकार कोयल व्यवहार से काली है और निश्चय से उस में पूर्वोक्त बीसों बोल पाये जाते हैं। ऐसेही तोता व्यवहार से हरा है, मजीठ लाल है, हलदी पीली है, शङ्ख सफेद है, कोष्ठ सुगन्ध मय है, मृतक शरीर दुर्गन्ध मय है, नीम तीखी है, सोंठ कड़ुवा है, कबिठ कसायला है, इमली खट्टी है, शक्कर मीठी है, वज्र कर्कश है, मक्खन मृदु (सुंहाला) है, लोहा भारी है, उल्लू की पाँख हलकी है, हिम शीत है, अग्नि उष्ण है, तेल स्निग्ध है, और भस्म रूक्ष है परन्तु निश्चय से इन सब में पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और आठ स्पर्श, ऐसे बीसों बोल पाये जाते हैं। निश्चय से जीव अमर है और व्यवहार से मरता है। निश्चय से पानी पड़ता है और व्यवहार से परनाल मोरी पड़ती है। निश्चय से गाँव के प्रति मनुष्य गया और व्यवहार से गाँव आया, इत्यादि।

८ उपादान-निमित्त कारण द्वार.

(उपादान कारण)

जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमे उस को उपादान कारण कहते हैं, जैसे घट की उत्पत्ति में मिट्टी। तथा अनादि काल से द्रव्य में जो पर्यायों का प्रवाह चला आरहा है उस में जो अनन्तर पूर्वक्षणवर्त्ती पर्याय है वह उपादान कारण है और अनन्तर उत्तरक्षणवर्त्ती जो पर्याय है वह कार्य है।

(निमित्त कारण)

जो पदार्थ स्वयं कार्य रूप न परिणमे किन्तु कार्य की उत्पत्ति में सहायक हो उस को निमित्त कारण कहते हैं, जैसे घट की उत्पत्ति में कुम्भकार दण्ड चक्र आदि।

उपादान कारण शिष्य का और निमित्त कारण गुरु महाराज का जिस से ज्ञान की प्राप्ति होती है। इस पर चौभङ्गी कहते हैं--

१ निमित्त अशुद्ध और उपादान भी अशुद्ध--जैसे गुरु अज्ञानी और शिष्य भी अज्ञानी। २ निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध-- जैसे गुरु अज्ञानी और शिष्य

ज्ञानी। ३ निमित्त शुद्ध और उपादान अशुद्ध – जैसे गुरु ज्ञानी और शिष्य अज्ञानी। ४ उपादान शुद्ध और निमित्त भी शुद्ध – जैसे गुरु ज्ञानी और शिष्य भी ज्ञानी। इस चौभङ्गी में पहला भंग सर्वथा अशुद्ध और चरम (अन्तका) भंग सर्वथा शुद्ध है। बीच के दो भङ्ग सामान्य हैं।

अथवा जैसे उपादान घास का और निमित्त गाय का जिस से दूध की प्राप्ति हुई। उपादान दूध का और निमित्त जावन (छाछ मठा आदि) देने का जिस से दही की प्राप्ति हुई। उपादान दही का और निमित्त बिलोने का जिस से मक्खन की प्राप्ति हुई। उपादान मक्खन का और निमित्त अग्नि का जिस से घी की प्राप्ति हुई।

९ प्रमाण द्वार.

सच्चे ज्ञान को प्रमाण कहते हैं, इस के चार भेद हैं– १प्रत्यक्ष, २अनुमान, ३उपमा और आगम।

१ प्रमाण के दूसरी जगह दो भेद कहे हैं– प्रत्यक्ष और परोक्ष। परोक्ष अर्थात् दूसरे की सहायता से पदार्थ को अस्पष्ट जानना। इस (परोक्ष) के तीन भेद हैं– १ अनुमान, २ उपमा और आगम। इस प्रकार चार भेद कहते हैं।

१ प्रत्यक्ष प्रमाण

जिस के द्वारा पदार्थ स्पष्ट जाना जावे उस को प्रत्यक्ष कहते हैं। इस के दो भेद हैं– इन्द्रिय प्रत्यक्ष और नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष। इन्द्रिय प्रत्यक्ष के पांच भेद हैं– १श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष, २चक्षुरिन्द्रिय प्रत्यक्ष, ३घ्राणेन्द्रिय प्रत्यक्ष, ४रसनेन्द्रिय प्रत्यक्ष, और स्पर्शेन्द्रिय प्रत्यक्ष। नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं– १अवधिज्ञान प्रत्यक्ष, २मनःपर्यवज्ञान प्रत्यक्ष और ३केवलज्ञान प्रत्यक्ष।

२ अनुमान प्रमाण

साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं। इस के तीन भेद हैं– १पूर्ववत्, २शेषवत् और ३दृष्टसाधर्म्यवत्।

पूर्ववत्– पूर्वोपलब्ध विशिष्ट चिह्न द्वारा जो पदार्थ का ज्ञान किया जावे, उस को पूर्ववत् कहते हैं, जैसे किसी माता का पुत्र बाल्यावस्था में विदेश चला गया और वह जवान होकर पीछा अपने घर आया तो उस की माता पूर्वदृष्ट क्षत व्रण लाञ्छन मस और तिल आदि चिह्नों द्वारा अपने पुत्र को पहचाने।

(१) शेषवत्– जो पुरुषार्थ के उपयोगी और जानने की चाह वाले अर्थ (प्रयोजन) से अन्य, जो उस से सहित है उस को शेषवत् कहते हैं, इस के पांच भेद हैं– १कज्जेणं (कार्येण), २कारणेणं (कारणेन), ३गुणेणं (गुणेन), ४अवयवेणं (अवयवेन), ५आसएणं (आश्रयेण)।

(कज्जेणं)– जो कार्य द्वारा कारण का अनुमान किया जावे, जैसे शब्द से शङ्ख, केकारव (मोर की बोली) से मयूर, हेषित (हिनहिनाहट) शब्द से अश्व, गुलगुलाट शब्द से हाथी और घणघणाट शब्द से रथ इत्यादि का अनुमान किया जावे।

(कारणेणं)– जो कारण द्वारा कार्य का अनुमान किया जावे, जैसे तन्तुओं द्वारा कपड़े का अनुमान किया जावे क्योंकि तन्तु कपड़े के कारण हैं, किन्तु कपड़ा तन्तुओं का कारण नहीं। इसी प्रकार वीरण (सरकण्डा) कड़े (टोकरे) का कारण है, परन्तु कड़ा वीरण का कारण नहीं तथा घड़े का कारण मृत्पिण्ड (मिट्टी का पिंड) है किन्तु मृत्पिण्ड का कारण घड़ा नहीं। रोटी का कारण आटा है, किन्तु आटे का कारण रोटी नहीं, इत्यादि।

(गुणेणं)– जो गुणों द्वारा गुणी (वस्तु का) अनुमान किया जावे, जैसे– ५६१०६१५ वांनी सोना निकष (कसोटी) में आया हुआ वर्ण द्वारा, पुष्प गन्ध द्वारा, लवण (नमक) रस द्वारा, मदिरा आस्वाद द्वारा, वस्त्र स्पर्श द्वारा, इत्यादि ।

(अवयवेणं)– जो अवयवों द्वारा अवयवी (वस्तु) का अनुमान किया जावे, जैसे भैंसा सींग द्वारा, कुक्कुट शिखा द्वारा, हस्ती दन्तमुशल द्वारा, सूअर दंष्ट्रा (डाढ़) द्वारा, मयूर पिच्छ (पँख) द्वारा, अश्व खुर द्वारा, वाघ नख द्वारा, चमरी गाय चामर द्वारा, वानर लाङ्गूल (पूँछ) द्वारा, मनुष्य द्विपद (दोपैर) द्वारा, गाय चौपद द्वारा, कानखजूरा और गजाई बहुपद द्वारा, सिंह केशरों द्वारा, वृषभ ककुद (स्कन्ध) द्वारा, स्त्री वलय द्वारा, सुभट शस्त्र द्वारा, महिला साड़ी कञ्चुकी द्वारा, द्रोणपाक (चाँवल आदि का कड़ाह) एक सित्थ (एक दाना) द्वारा, कवि गाथा द्वारा, इत्यादि जाना जावे ।

(आसएणं) जो आश्रय द्वारा अनुमान किया जावे, जैसे अग्नि धूम द्वारा, सरोवर बगुलों की पंक्ति

१ यह सोने की जाति का नाम है।

द्वारा, वृष्टि बादलों के विकार द्वारा, कुलीन पुत्र शील आचार द्वारा, इत्यादि जाना जावे।

(३) दृष्टसाधर्म्यवत्– पूर्वोपलब्ध अर्थ के साथ जो साधर्म्य (तुल्यपना) हो उस को दृष्टसाधर्म्य कहते हैं, और वह गमक (जनानेहार) पने से विद्यमान है जिस में, उस को दृष्टसाधर्म्यवत् कहते हैं, इस के दो भेद हैं– सामान्य दृष्ट और विशेष दृष्ट।

सामान्य पने देखे हुए अर्थ के योग से सामान्य दृष्ट कहा जाता है, जैसे सामान्य पने (आकृतिद्वारा) तो जैसा एक पुरुष है वैसे ही बहुत पुरुष हैं और जैसे बहुत पुरुष हैं वैसा ही एक पुरुष है; तथा जैसा एक सोनैया है वैसे ही बहुत सोनैये हैं, और जैसे बहुत सोनैये हैं वैसा ही एक सोनैया है।

विशेष पने देखे हुए अर्थ के योग से विशेषदृष्ट कहा जाता है, जैसे किसी पुरुष ने कहीं भी किसी एक पुरुष को पहले देखा था और उसी पुरुष को समयान्तर में बहुत पुरुषों की समाज के मध्य देखा हुआ देखकर यह अनुमान करता है कि मैंने इस पुरुष को पहले कहीं देखा था वही यह पुरुष है। इसी प्रकार पूर्वदृष्ट एक सोनैये को बहुत से सोनैयों के बीच में

पड़ा हुआ देख अनुमान करे कि यह सोनैया वही है जिसे मैंने पहले देखा था।

इसी विशेष दृष्ट के संक्षेप से तीन भेद कहते हैं- अतीत काल ग्रहण, वर्त्तमान काल ग्रहण और अनागत काल ग्रहण।

अतीत काल विषय जो ग्राह्य वस्तु का परिच्छेद(ज्ञान) उसको अतीतकाल ग्रहण कहते हैं, जैसे ग्रामान्तर जाते हुए किसी पुरुष ने रास्ते में तृण सहित भूमि धान्य के बहुत समूह (ढेर) निपजे हुए, कुण्ड सरोवर नदी बावड़ी तालाब आदि भरे हुए, और बाग बगीचे हरे भरे देखकर अनुमान किया कि इस स्थान पर अतीत काल में सुवृष्टि हुई है।

जो वर्त्तमानकालविषयक ग्रहण हो उसको वर्त्तमान काल ग्रहण कहते हैं, जैसे गोचरी जाते हुए किसी मुनिराज ने अत्यन्त भाव भक्ति से प्रचुर भात पानी देते हुए बहुत दातारों को देखकर अनुमान किया कि यहां अभी वर्त्तमान काल में सुभिक्ष है।

जो अनागत (भविष्यत्) काल विषयक ग्रहण हो उस को अनागत काल ग्रहण कहते हैं। जैसे आकाश का निर्मल पना, पर्वतों की श्यामता, विजली सहित

द्वारा, वृष्टि बादलों के विकार द्वारा, कुलीन पुत्र शील आचार द्वारा, इत्यादि जाना जावे।

(३) दृष्टसाधर्म्यवत्– पूर्वोपलब्ध अर्थ के साथ जो साधर्म्य (तुल्यपना) हो उस को दृष्टसाधर्म्य कहते हैं, और वह गमक (जनानेहार) पने से विद्यमान है जिस में, उस को दृष्टसाधर्म्यवत् कहते हैं, इस के दो भेद हैं– सामान्य दृष्ट और विशेष दृष्ट।

सामान्य पने देखे हुए अर्थ के योग से सामान्य दृष्ट कहा जाता है, जैसे सामान्य पने (आकृतिद्वारा) तो जैसा एक पुरुष है वैसे ही बहुत पुरुष हैं और जैसे बहुत पुरुष हैं वैसा ही एक पुरुष है; तथा जैसा एक सोनैया है वैसे ही बहुत सोनैये हैं, और जैसे बहुत सोनेये हैं वैसा ही एक सोनैया है।

विशेष पने देखे हुए अर्थ के योग से विशेषदृष्ट कहा जाता है, जैसे किसी पुरुष ने कहीं भी किसी एक पुरुष को पहले देखा था और उसी पुरुष को समयान्तर में बहुत पुरुषों की समाज के मध्य बैठा हुआ देखकर वह अनुमान करता है कि मैंने इस पुरुष को पहले कहीं देखा था वही यह पुरुष है। इसी प्रकार पूर्वदृष्ट एक सोनैये को बहुत से सोनैयों के बीच में

पड़ा हुआ देख अनुमान करे कि यह सोनैया वही है जिसे मैंने पहले देखा था।

इसी विशेष दृष्ट के संक्षेप से तीन भेद कहते हैं— अतीत काल ग्रहण, वर्तमान काल ग्रहण और अनागत काल ग्रहण।

अतीत काल विषय जो ग्राह्य वस्तु का परिच्छेद (ज्ञान) उसको अतीतकाल ग्रहण कहते हैं, जैसे ग्रामान्तर जाते हुए किसी पुरुष ने रास्ते में तृण सहित भूमि धान्य के बहुत समूह (ढेर) निपजे हुए, कुण्ड सरोवर नदी बावड़ी तालाब आदि भरे हुए, और बाग बगीचे हरे भरे देखकर अनुमान किया कि इस स्थान पर अतीत काल में सुवृष्टि हुई है।

जो वर्त्तमानकालविषयक ग्रहण हो उसको वर्त्तमान काल ग्रहण कहते हैं, जैसे गोचरी जाते हुए किसी मुनिराज ने अत्यन्त भाव भक्ति से प्रचुर भात पानी देते हुए बहुत दातारों को देखकर अनुमान किया कि यहां अभी वर्त्तमान काल में सुभिक्ष है।

जो अनागत (भविष्यत्) काल विषयक ग्रहण हो उस को अनागत काल ग्रहण कहते हैं। जैसे आकाश का निर्मल पना, पर्वतों की श्यामता, बिजली सहित

मेघ, बादलों की भरी हुई गम्भीर गर्जना, वृष्टि के अनुकूल प्रशस्त हवा, सन्ध्या का तेजसहित स्निग्ध लाल पना और वारुण मण्डल माहेन्द्र मण्डल आदि में होने वाले वृष्टि के उत्पादक प्रशस्त चिह्नों को देख कर किसी ने अनुमान किया कि इस स्थान पर अनागत (भविष्यत्) काल में अच्छी वृष्टि होगी।

इसी प्रकार पूर्वोक्त चिह्नों से विपरीत चिह्नों को देखने से भी तीनों काल का अनुमान किया जाता है, यथा—

अतीत काल ग्रहण— जैसे ग्रामान्तर जाते हुए किसी पुरुष ने रास्ते में तृण रहित भूमि, धान्य के समूह नहीं निपजे हुए, कुण्ड सरोवर नदी बावड़ी तालाब आदि सूखे हुए, और बाग बगीचे कुम्हलाये हुए देख कर अनुमान किया कि यहां अतीत काल में वृष्टि नहीं हुई है।

१ वारुण मण्डल के ७ नक्षत्र- १ आर्द्रा, २ अश्लेषा ३ उत्तराभाद्रपद, ४ रेवती, ५ शतभिषग्, ६ पूर्वाषाढ़ा ७ मूल।

२ माहेन्द्र मण्डल के ७ नक्षत्र— १ ज्येष्ठा २ अनुराधा ३ रोहिणी ४ धनिष्ठा ५ श्रवण ६ अभिजित् ७ उत्तराषाढ़ा।

वर्तमान काल ग्रहण– जैसे कहीं गोचरी गये हुए किसी मुनिराज ने वहां दातार थोड़े, भाव भक्ति नहीं, भात पानी का न मिलना, इत्यादि देख कर अनुमान किया कि यहां पर दुष्काल है।

अनागत काल ग्रहण– जैसे दिशा का धुँधलापन, तेजरहितरुक्ष सन्ध्या, वृष्टि के प्रतिकूल नैऋत कोण की अप्रशस्त हवा और अग्निमण्डल[1] वायुमण्डल[2] आदि में होने वाले कुचिह्न इत्यादि देखकर किसी ने अनुमान किया कि यहां अनागत काल में वृष्टि यथायोग्य नहीं होगी।

३ उपमा प्रमाण–

जिस सदृशता से उपमेय (पदार्थ) का ज्ञान हो उस को उपमा प्रमाण कहते हैं। इस के दो भेद हैं:– साधर्म्योपनीत और वैधर्म्योपनीत।

साधर्म्योपनीत–साधर्म्य (समानधर्मता) से उपनय जिस में उस को साधर्म्योपनीत कहते हैं।

---

१ अग्निमण्डल के ७ नक्षत्र– १ कृत्तिका. २ भरणी. [illegible]. ४ विशाखा. ५ पूर्वाफाल्गुनी ६ पूर्वाभाद्रपद ७ मघा।

२ वायुमण्डल के ७ नक्षत्र– १ मृगशिर २ पुनर्वसु. ३ अश्विनी [illegible]त ५ चित्रा ६ स्वाती ७ उत्तराफाल्गुनी।

इस के तीन भेद हैं– किञ्चित्साधर्म्योपनीत, प्रायःसाधर्म्योपनीत और सर्वसाधर्म्योपनीत।

किञ्चित्साधर्म्योपनीत– जिस में थोड़े अंश का साधर्म्य हो, जैसे– जैसा मेरु है वैसा सरसों है और जैसा सरसों है वैसा ही मेरु है, अर्थात् इन दोनों में गोलपन का साधर्म्य है। तथा जैसा समुद्र है वैसा ही गोष्पद (पानीयुक्त गोखुरप्रमाण क्षेत्र) है और जैसा गोष्पद है वैसा ही समुद्र है, अर्थात् इन दोनों में जलपूर्णत्व का साधर्म्य है। तथा जैसा सूर्य है वैसा ही खद्योत (आगिया) है और जैसा खद्योत है वैसा ही सूर्य है, अर्थात् इन दोनों में प्रकाशपने का साधर्म्य है। तथा जैसा चन्द्र है वैसा ही कुमुद (चन्द्रविकाशी कमल) है और जैसा कुमुद है वैसा ही चन्द्र है, अर्थात् इन दोनों में आह्लादकत्व का साधर्म्य है।

प्रायःसाधर्म्योपनीत– जिस में प्रायः बहुत से अंशों का साधर्म्य हो, जैसे– जैसी गौ है वैसा ही गवय (रोझ) है और जैसा गवय है वैसी ही गौ है अर्थात् इन दोनों में खुर ककुद (स्कन्ध) आकृति और पूंछ आदि बहुत अंशों का साधर्म्य है, परन्तु विशेष यह है कि गौ के कम्बल होता है, जो गले में

लंबा सा चर्म लटकता रहता है और गवय का गला गोल होता है।

सर्वसाधर्म्योपनीत– जिस में सर्वथा साधर्म्य हो। ऐसी सर्वसाधर्म्योपनीत वस्तु जगत् में कोई भी नहीं है, तथापि भव्य जीवों को समझाने के लिए शास्त्रकार सर्वसाधर्म्य दिखाते हैं– जैसे तीर्थङ्कर तीर्थङ्कर जैसे अर्थात् सर्वोत्तम तीर्थ प्रवर्त्तनादि कार्य तीर्थङ्कर ही करते हैं। तथा चक्रवर्त्ती चक्रवर्त्ती जैसे, बलदेव बलदेव जैसे, वासुदेव वासुदेव जैसे और साधु साधु जैसे।

वैधर्म्योपनीत–

वैधर्म्य से उपनय है जिस में उसको वैधर्म्योपनीत कहते हैं। इस के भी तीन भेद हैं – किञ्चिद्वैधर्म्योपनीत, प्रायोवैधर्म्योपनीत और सर्ववैधर्म्योपनीत।

किञ्चिद्वैधर्म्योपनीत– जिस में किञ्चिन्मात्र

१ यहां साधर्म्य दृष्टान्त अच्छी वस्तु की अपेक्षा से कहा है। वास्तव में तो जहां साधन की सत्ता द्वारा साध्य को बताथी जावे वही साधर्म्य गिना जाता है, जैसे पर्वत अग्नि है धूम वाला होने से, जो धूम वाला होता है वह अग्निवाला होता है रसोई घर। यहां रसोईघर का दृष्टान्त साधर्म्योपनीत है।

वैधर्म्य हो ; जैसे – " जहा सामलेरो न तहा बाहु लेरो, जहा बाहुलेरो न तहा सामलेरो " अर्थात् जैसा शबला गाय का बछड़ा शाबलेय है, वैसा बहुला गाय का बछड़ा बाहुलेय नहीं है । इन दोनों में शेष धर्मों की तुल्यता है, किन्तु सिर्फ भिन्न निमित्त जन्मादि का वैधर्म्य है ।

प्रायोवैधर्म्योपनीत – जिस में प्रायः करके वैधर्म्य हो । जैसे– "जहा वायसो न तहा पायसो, जहा पायसो न तहा वायसो" अर्थात्– जैसा वायस (कौवा) है वैसा पायस (खीर) नहीं है और जैसा पायस है वैसा वायस नहीं है । इन दोनों में सिर्फ इन के नाम में आये हुए दो वर्णों का साधर्म्य है, परन्तु सचेतन अचेतन पना आदि वैधर्म्य बहुत है ।

सर्ववैधर्म्योपनीत – जिस में सर्वथा वैधर्म्य हो । ऐसी सर्व वैधर्म्योपनीत वस्तु जगत् में कोई भी नहीं है, परन्तु भव्य जीवों को समझाने के लिए शास्त्रकार सर्ववैधर्म्य दिखाते हैं , जैसे– नीचने नीच जैसा

१ इस दृष्टान्त में वैधर्म्य नहीं है, किन्तु साधर्म्य है, परन्तु प्रथम कथन (अच्छी वस्तु का कथन) की अपेक्षा वैधर्म्य पाया जाता है, क्योंकि यहां पर साधर्म्य वैधर्म्य का दृष्टान्त अच्छी और

किया, दासने दास जैसा किया, कौवेने कौवे जैसा किया, कुत्तेने कुत्ते जैसा किया, और प्राणीने प्राणी जैसा किया।

अब प्रकारान्तर से उपमा प्रमाण के चार भेद दिखाते हैं--१सत् (छती) वस्तु को सत् (छती) उपमा, २सत् (छती) वस्तु को असत् (अछती) उपमा, ३असत् (अछती) वस्तु को सत (छती) उपमा और ४असत (अछती) वस्तु को असत (अछती) उपमा।

१छती वस्तु को छती उपमा- जैसे तीर्थङ्कर भगवान का हृदय नगर के कपाट के सदृश और श्रीवत्स के चिह्न से अङ्कित है, भुजाएं नगर की अर्गला (भोगल) के सदृश है और शब्द दुन्दुभि तथा मेघ गर्जना के समान गम्भीर है।

२छती वस्तु को अछती उपमा- जैसे नारक तिर्यञ्च मनुष्य और देव, इन का आयुष तो छता है

बुरी वस्तु की अपेक्षा करके ही कहा गया है। वास्तव में तो जहां साध्य के अभाव द्वारा साधन का अभाव बताया जावे, वहां वैधर्म्य गिना जाता हैं, जैसे- यह पर्वत अग्निवाला है, धूमवाला होने से; जो अग्निवाला नहीं होता है, वह धूमवाला नहीं होता, जैसे जलहृद (तालाब)। यहां तालाब का दृष्टान्त वैधर्म्य है।

इस को अछती पल्योपम सागरोपम की उपमा देना।

३अछती वस्तु को छती उपमा-- जैसे वृक्ष के जीर्ण पत्र को गिरते हुए देख कर किशलय (कोंपल) का हँसना, यथा—

दोहे.

पान झड़न्ता देख कर, हंसी कोंपलियाँ।
मोय वीती तोय वीतसी, धीरी वापड़ियाँ ॥१॥
पान झड़न्तो इम कहे, सुन तरवर! वनराय!।
अब के बिछड़े कब मिलें? दूर पड़ेंगे जाय ॥२॥
तब तरवर उत्तर दिया, सुनो पत्र! इक बात।
इस घर याही रीत है, इक आवत इक जात ॥३॥
नहीं पत्र उठ बोलिया, नहीं तरू उत्तर दिराय।
वीर वखानो ओपमा, अनुयोग द्वार के माय ॥४॥

४अछती वस्तु को अछती उपमा– जैसे गधे के सींग ससा (शशले) के सींग जैसे हैं और ससा के सींग गधे के सींग जैसे हैं।

४ आगम प्रमाण—

जिस के द्वारा जीवादि पदार्थ समस्त प्रकार जाने जावें, उस को आगम प्रमाण कहते हैं। इस के दो भेद हैं– लौकिक आगम और लोकोत्तर आगम।

लौकिक आगम– जो ये प्रत्यक्ष अज्ञानी मिथ्यादृ-
ष्टियों के स्वच्छन्द बुद्धि और मति से कल्पित (बनाये
हुए) हैं, वे इस प्रकार हैं– १ भारत, २ रामायण, ३ भीमा-
सुरुक्ख, ४ कौटिल्य (शास्त्र), ५ शकट भद्रिका, ६ खोड
(घोटक) मुख, ७ कार्पासिक, ८ नागसूक्ष्म, ९ कनकस-
प्तति, १० वैशेषिक, ११ बुद्धवचन, १२ त्रैराशिक, १३
कापिलिक, १४ लौकायत, १५ षष्टितन्त्र, १६ माठर, १७
पुराण, १८ व्याकरण, १९ भागवत, २० पातञ्जल, २१
पुष्यदैवत, २२ लेख, २३ गणित, २४ शकुनिरुत, २५ ना-
टक अथवा बहत्तर कलाएं, और २६ चारों वेद अङ्ग
उपाङ्ग सहित।

लोकोत्तर आगम– जो ये केवल ज्ञान केवल दर्शन
के धारण करने वाले, तीन काल के ज्ञाता, तीनों लोक
द्वारा वन्दित महित और पूजित, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी
अरिहन्त भगवान द्वारा प्रणीत (रचे हुए) आचार्य की
पेटी समान जो द्वादशाङ्ग (बारह अङ्ग)। वे इस प्रकार हैं–
१ आचाराङ्ग, २ सूत्रकृताङ्ग, ३ स्थानाङ्ग, ४ समवायाङ्ग,
५ भगवत्यङ्ग (विवाहपन्नत्ती), ६ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, ७ उपास-
कदशाङ्ग, ८ अन्तकृद्दशाङ्ग, ९ अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग,
१० प्रश्नव्याकरणदशाङ्ग, ११ विपाकश्रुताङ्ग और १२
दृष्टिवाद।

इस लोकोत्तर आगम के तीन भेद भी होते हैं, वे इस प्रकार हैं– १सूत्रागम, २अर्थागम और ३तदुभयागम। सूत्रागम– "सूत्रयति वेष्टयति अल्पाक्षराणि बह्वर्थानीति सूत्रम्।" अर्थ– जिस के द्वारा बहुत अर्थ थोड़े अक्षरों में वेढ़ा (बीटा) जावे उस को सूत्र कहते हैं। अथवा

"सुत्तं गणहररइयं, तहेव पत्तेयबुद्धरइयं च।
सुत्तं केवलिरइयं, अभिन्नदसपुव्विरइयं च॥ १॥"

अर्थ– गणधर भगवान के रचे हुए, प्रत्येक बुद्ध मुनिराज के रचे हुए, केवली भगवान के रचे हुए और चौदहपूर्वी से लेकर यावत् संपूर्ण दशपूर्वी के रचे हुए को सूत्र कहते हैं। ऐसे सूत्र रूप आगम को सूत्रागम कहते हैं। २अर्थागम– पूर्वोक्त सूत्र के अर्थ रूप आगम को अर्थागम कहते हैं। ३तदुभयागम– पूर्वोक्त सूत्र और उसका अर्थ, इन दोनों रूप आगम को तदुभयागम कहते हैं।

इसी लोकोत्तर आगम के दूसरी तरह से भी तीन भेद होते हैं, वे इस प्रकार हैं– १अत्तागम (आत्मागम), २अणंतरागम (अनन्तरागम) और ३परम्परागम। तीर्थङ्करों के अर्थरूप आगम आत्मागम है और

गणधरों के सूत्ररूप आगम तो आत्मागम हैं और अर्थरूप आगम अनन्तरागम हैं। तथा गणधरों के शिष्यों के सूत्ररूप आगम अनन्तरागम हैं और अर्थरूप आगम परम्परागम हैं। इस के बाद इन के शिष्य प्रशिष्यों के सूत्ररूप आगम और अर्थरूप आगम ये दोनों ही परम्परागम हैं किन्तु आत्मागम और अनन्तरागम नहीं हैं।

१० गुणगुणी द्वार.

ज्ञानादि को गुण कहते हैं, उन ज्ञानादि गुणों को धारण करने वाले को गुणी कहते हैं।

११ सामान्य विशेष द्वार.

जो संक्षेप से वस्तु का वर्णन किया जावे उस को सामान्य कहते हैं और जिस के द्वारा वस्तु का भिन्न भिन्न कर के विस्तार किया जावे उस को विशेष कहते हैं। इस सामान्य विशेष को दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं, जैसे- (१) सामान्य से द्रव्य और विशेष से द्रव्य के दो भेद होते हैं- १ जीव द्रव्य और २ अजीव द्रव्य।

(२) सामान्य से जीव द्रव्य और विशेष से दो भेद- १संसारी और २सिद्ध। (३) सामान्य से सिद्ध और विशेष से दो प्रकार- १अनन्तर सिद्ध और २परम्पर सिद्ध। (४) सामान्य से अनन्तर सिद्ध और विशेष से पन्द्रह भेद- १ तीर्थ सिद्ध, २ अतीर्थ सिद्ध, ३ तीर्थंकर सिद्ध, ४ अतीर्थंकर सिद्ध, ५ स्वयम्बुद्ध सिद्ध, ६ प्रत्येकबुद्ध सिद्ध, ७बुद्धबोधित सिद्ध, ८ स्त्रीलिङ्ग सिद्ध, ९ पुरुषलिङ्ग सिद्ध, १० नपुंसकलिङ्ग सिद्ध, ११ स्वलिङ्ग सिद्ध, १२ अन्यलिङ्ग सिद्ध, १३ गृहिलिङ्ग सिद्ध, १४ एक सिद्ध और १५ अनेक सिद्ध। (५) सामान्य से परम्पर सिद्ध और विशेष से अनेक भेद- १ अप्रथम समय सिद्ध, २ द्विसमय सिद्ध, ३ त्रिसमय सिद्ध ४।५।६।७।८।९।१० समय सिद्ध यावत् ११ संख्यात समय सिद्ध, १२ असंख्यात समय सिद्ध और १३ अनन्त समय सिद्ध।

(६) सामान्य से संसारी जीव और विशेष से चार प्रकार- १ नारक, २ तिर्यञ्च, ३ मनुष्य और ४ देव। (७) सामान्य से नारक और विशेष से सात प्रकार- १ रत्नप्रभा नारक, २ शर्कराप्रभा नारक, ३ वालुकाप्रभा नारक, ४ पङ्कप्रभा नारक, ५ धूमप्रभा नारक,

६ तमःप्रभा नारक और ७ तमस्तमाप्रभा नारक। (८) सामान्य से रत्नप्रभा नारक और विशेष से दो प्रकार-पर्याप्त नारक और अपर्याप्त नारक। इसी प्रकार पर्याप्त और अपर्याप्त' इन दो दो भेदों से शेष छहों (१४) पृथिवियों के नारकों के भेद जान लेना चाहिये।

(१५) सामान्य से तिर्यञ्च और विशेष से पांच प्रकार- १ एकेन्द्रि, २ द्वीन्द्रिय, ३ त्रीन्द्रिय, ४ चतुरिन्द्रिय और ५ पञ्चेन्द्रिय। (१६) सामान्य से एकेन्द्रिय और विशेष से पांच प्रकार- १ पृथिवीकाय, २ अप्काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय और ५ वनस्पति काय। (१७) सामान्य से पृथिवीकाय और विशेष से दो प्रकार- १ सूक्ष्मपृ० और २ बादरपृ० (१८) सामान्य से सूक्ष्म पृथ्वीकाय और विशेष से दो प्रकार- १ पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय और २ अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय। (१९) सामान्य से बादर पृथ्वीकाय और विशेष से दो प्रकार-- १ पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय और २ अपर्याप्त बादर पृथ्वीकाय। इसी प्रकार (२२) अप्काय, (२५) तेजस्काय, (२८) वायुकाय और (३१) वनस्पतिकाय के भेद जान लेवें।

३२ सामान्य से द्वीन्द्रिय और विशेष से दो

प्रकार हैं– १ पर्याप्त द्वीन्द्रिय और २ अपर्याप्त द्वीन्द्रिय। इसी प्रकार (३३) त्रीन्द्रिय, (३४) चतुरिन्द्रिय और (३५) पञ्चेन्द्रिय आदि के सामान्य विशेष भेद जान लेवें।

१२ ज्ञेय-ज्ञान-ज्ञानी द्वार.

ज्ञेय— जानने योग्य पदार्थ (घटपटादि वस्तु) को ज्ञेय कहते हैं। ज्ञान– जो संशय विपर्यय और अनध्यवसाय, इन तीनों दोषों से रहित और १ कारण २ स्वरूप तथा ३ भेदाभेद, इन तीनों से सहित पदार्थ की सम्यक् प्रतीति हो उसको ज्ञान कहते हैं। ज्ञानी – जो इसी ज्ञान द्वारा पदार्थ को जानने वाला चेतन है उस को ज्ञानी कहते हैं।

अब ध्येय ध्यान ध्यानी पर त्रिभङ्गी कहते हैं– ध्येय– ध्यान करने योग्य पदार्थ को ध्येय कहते हैं। ध्यान– चित्त की एकाग्रता- जो अन्तर्मुहूर्त्त मात्र किसी ध्येय पदार्थ पर लगी रहती है– उस को ध्यान कहते हैं। ध्यानी– किसी पदार्थ का ध्यान करने वाले चेतन को ध्यानी कहते हैं।

१३ उत्पाद- व्यय ध्रुव-द्वार.

वस्तु में नई पर्याय के उत्पन्न होने को उत्पाद, पूर्व पर्याय के नष्ट होने को व्यय और द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा वस्तु के निरन्तर रूप से रहने को ध्रुव कहते हैं।

१४ आधाराधेय द्वार.

जिस पर वस्तु ठहरे उसको आधार कहते हैं, जैसे आकाश। ठहरने योग्य वस्तु को आधेय कहते हैं, जैसे पांच द्रव्य-- १ धर्म २ अधर्म ३ जीव ४ पुद्गल और ५ काल। इन आधाराधेय पर आठ प्रकार की लोकस्थिति को दिखाते हैं---

जैसे सब द्रव्यों का आधार आकाश है और आकाश पर वायु१, वायु पर उदधि२, उदधि पर पृथिवी३, पृथिवी पर त्रसस्थावर प्राणी४, अजीव जीवों के आश्रित ५, जीव कर्मों के आश्रित ६, अजीव जीवों से संगृहीत ७ और जीव कर्मों से संगृहीत।

१५ आविर्भाव-तिरोभाव द्वार

कार्य का नजदीक में प्रकट होना उस को आविर्भाव और दूर में प्रकट होना उसको तिरोभाव कहते हैं। इस पर दृष्टान्त कहते हैं– जैसे भव्य जीव में मोक्ष का तिरोभाव (दूरपना) है और सम्यग्दृष्टि में मोक्ष का आविर्भाव (नजदीकपना) है। सम्यग्दृष्टि में मोक्ष का तिरोभाव और साधुपन में मोक्ष का आविर्भाव है। साधुपन में मोक्ष का तिरोभाव और क्षपकश्रेणि में मोक्ष का आविर्भाव है। क्षपकश्रेणि में मोक्ष का तिरोभाव और सयोगी केवली में मोक्ष का आविर्भाव है। सयोगी केवली में मोक्ष का तिरोभाव और अयोगी केवली में मोक्ष का आविर्भाव है। अथवा तृण में घृत का तिरोभाव और गाय के स्तनों में घृत का आविर्भाव है। गाय के स्तनों में घृत का तिरोभाव और दूध में घृत का आविर्भाव है। दूध में घृत का तिरोभाव और दही में घृत का आविर्भाव है। दही में घृत का तिरोभाव और मक्खन में घृत का आविर्भाव है॥

१६ मुख्यता— गोणता द्वार.

अग्रेसर (आगेवानी) पने को मुख्यता कहते हैं। और जो अग्रेसर के पेटे में हो उस को गोणता कहते हैं। इन पर दृष्टान्त कहते हैं– जैसे उत्तराध्ययन सूत्र के दसवें अध्ययन में वीरप्रभु ने "समयं गोयमा! मा पमायए" ऐसा उपदेश जो श्री गौतमस्वामी को दिया उसमें मुख्यता श्रीगौतमस्वामी की है और गोणता सकल चतुर्विध संघ की है।

१७ उत्सर्गापवाद द्वार.

उत्कृष्ट क्रिया का करना उसको उत्सर्ग कहते हैं, जैसे तीन गुप्ति का गोपना अथवा जिनकल्पी का आचार। उत्कृष्ट क्रिया को अवष्टम्भन (सहायता) देना उस का नाम अपवाद है, जैसे पांच समितियों में प्रवर्त्तना अथवा स्थविरकल्पी का आचार।

अब उत्सर्ग और अपवाद की षट्भङ्गी दिखाते – १ उत्सर्गोत्सर्ग, २ उत्सर्ग, ३ उत्सर्गापवाद, ४ अपवादोत्सर्ग, ५ अपवाद और ६ अपवादापवाद।

१ उत्सर्गोत्सर्ग– जो उत्कृष्ट से उत्कृष्ट क्रिया की जावे, जैसे गजसुकुमाल मुनि भिक्षु की बारहवीं प्रतिमा को अङ्गीकार कर श्मशान भूमि में खड़े रहे और जो सोमिल ब्राह्मण ने आकर उपसर्ग किया उस को सम्यक् प्रकार से सहन किया। उस को उत्सर्गोत्सर्ग कहते हैं।

२ उत्सर्ग– जो तीन गुप्ति का धारण करना उस को उत्सर्ग कहते हैं।

३ उत्सर्गापवाद– उत्कृष्ट क्रिया को करते हुए उस के सहायक रूप अपवाद का सेवन करना उस को उत्सर्गापवाद कहते हैं, जैसे किसी मुनि ने चोविहार (चउव्विहाहार– चतुर्विधाऽऽहार) उपवास किया हो मगर पेरिट्ठावणिया (सब के आहार कर चुकने पर बचा हुआ) आहार करना पड़े।

४ अपवादोत्सर्ग– कारण वश अपवाद को सेवते हुए भी हेयोपादेय विचार कर जो उत्कृष्ट क्रिया को

---

१ यह आहार सिर्फ एक उपवास वाले को ही दिया जाता है, किन्तु एक उपवास से अधिक-बेला– तेलादिक तपस्या वाले को नहीं कल्पता।

सेवन करे उस को अपवादोत्सर्ग कहते हैं, जैसे धर्म-रुचि मुनि कड़ुवे तुम्बे के आहार को परठवने के लिए गये वहां पर उस का एक बिन्दु भी परठवने पर बहुतसी कीड़ियों की अजयणा (अयतना) देख कर उस आहार को स्वयं सेवन कर के वहीं संथारा (अनशन व्रत) कर लिया।

५ अपवाद– जो पांच समिति में प्रवृत्ति की जावे उस को अपवाद कहते हैं।

६ अपवादापवाद–जो अपवाद में भी कारण वश अपवाद का सेवन करना पड़े उस को अपवादापवाद कहते हैं, जैसे कोई मुनिराज गोचरी गये और कारण वश वहां गृहस्थ के घर में बैठना पड़े यह तो अपवाद और फिर विशेष कारण वश उसी स्थान पर बैठ कर आहार भी करना पड़े वह अपवादापवाद कहा जाता है।

१८ आत्म- द्वार.

जो चेतनालक्षणवाला हो उस को आत्मा कहते हैं। इस के तीन भेद होते हैं– १ बाह्यात्मा, २ अन्तरात्मा और ३ परमात्मा।

१ बाह्यात्मा– जो राज्य ऋद्धि भण्डार आज्ञा (हुक्म) दास दासी इज्जत (गौरव) आबरू (प्रतिष्ठा) भाई भतीजा बेटा बेटी हाथी घोड़ा रथ पालखी धन धान्य वस्त्र आभूषण मकान हाट हवेली, इत्यादि बाह्य सम्पदा में लीन रहे और इसी को अपनी कर माने उस को बाह्यात्मा कहते हैं। यथा–

पुद्गल से रातो रहे, जाणे यही निधान।
तस लाभे लोभ्यो रहे, बहिरातम अभिधान ॥१॥

यह बाह्यात्मा पहले दूसरे और तीसरे गुणस्थान तक रहता है।

२ अन्तरात्मा– जो उपरोक्त बाह्य सम्पदा से उदासीन रहे और विरक्त भाव से सेवन करे तथा आत्मसत्ता को पहिचान कर स्वस्वभाव में लीन रहे और ज्ञानादि निजगुण से प्रीति करे उस को अन्तरात्मा कहते हैं। यथा–

पुद्गल खल संगी परे सेवे अवसर देख।
तनु अस्वच्छ जिम लाकड़ी ज्ञानदृष्टि कर देख ॥१॥
पुद्गल भाव रूचे नहीं, ताते रहे उदास।
सो अन्तर आतम लहे, परमातम परकास ॥२॥

यह अन्तरात्मा चौथे से बारहवें गुणस्थान तक रहता है।

३ परमात्मा– जो उत्कृष्ट आत्मा अर्थात् सकल उपाधि (क्लिष्टकर्म) से रहित और केवल–ज्ञान केवल–दर्शन आदि सम्पूर्ण आत्मगुणों से विभूषित हो उस को परमात्मा कहते हैं। इस के दो भेद हैं– १ द्रव्य परमात्मा और २ भाव परमात्मा। १ द्रव्य-परमात्मा तो समभिरूढ़ नय के अभिप्राय से तेरहवें चौदहवें गुणस्थान पर रहे हुए केवली भगवान को कहते हैं और २ भाव–परमात्मा एवंभूत नय के अभिप्राय से जो आठों ही कर्मों से रहित आठ गुणों से विभूपित लोक के अग्रभाग में विराजमान और साद्यनन्त सुखमय सिद्ध भगवान् को कहते हैं। यथा–

बहिरातम तज आतमा, अन्तर आतम रूप।
परमातम ने ध्यावतां, प्रगटे सिद्ध स्वरूप ॥१॥

दूसरी तरह से भी आत्मा के तीन भेद होते हैं– १ स्वात्मा, २ परात्मा और ३ परमात्मा। यथा––

स्वआतम को दमन कर, पर आतम को चीन।
परमातम को भजन कर, सोही मत परवीन ॥१॥

१९ ध्यान (४) द्वार

ध्यान– जो अन्तर्मुहूर्त तक चित्तवृत्ति को एक वस्तु पर लगाना उस को ध्यान कहते हैं। इस के

चार भेद होते हैं- १ आर्त्तध्यान, २ रौद्रध्यान, ३ धर्मध्यान और ४ शुक्लध्यान। इन चारों ही ध्यानों का विशेष वर्णन भगवती सूत्र उववाई सूत्र आदि अनेक ग्रन्थों से जान लेना चाहिये।

अब प्रकारान्तर से ध्यान के चार भेद कहते हैं- १ पदस्थ-ध्यान, २ पिण्डस्थ-ध्यान, ३ रूपस्थ-ध्यान और ४ रूपातीत-ध्यान।

१पदस्थ-ध्यान— अरिहन्तादिक पांच परमेष्ठियों के गुणों का स्मरण कर के चित्त में उन का ध्यान करना उस को पदस्थ ध्यान कहते हैं।

२ पिण्डस्थ-ध्यान—पिण्ड याने अपने शरीर में रही हुई अपनी आत्मा में अरिहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु के गुणों की चिन्तवना करना, अथवा गुणी के गुणों में उपयोग की एकता करना उस को पिण्डस्थ ध्यान कहते हैं।

३रूपस्थ-ध्यान—जो रूप में रहा हुआ भी मेरा जीव अरूपी और अनन्तगुणी है ऐसी चिन्तवना करना, तथा जो वस्तु का स्वरूप अतिशयावलम्बी होने पर आत्मा के रूप की एकता चिन्तवना उस को रूपस्थ ध्यान कहते हैं। इन तीनों ध्यानों का समावेश पूर्वोक्त धर्म-ध्यान में होता है।

४ रूपातीत- ध्यान— निरञ्जन निर्मल संकल्प विकल्प रहित अभेद एक शुद्ध सत्तारूप चिदानन्द तत्त्वामृत असङ्ग अखण्ड अनन्त गुण-पर्याय-- शाली आत्मस्वरूप के चिन्तवने को रूपातीत ध्यान कहते हैं। इस ध्यान में गुणस्थान, मार्गणा, नय, प्रमाण, निक्षेप, मति, श्रुत आदि सब क्षयोपशम भाव छूट जाते हैं केवल सिद्ध के एक मूलगुण का ही चिन्तवन रहता है इस लिए यह ध्यान शुक्ल ध्यान के अन्तर्गत हो जाता है ॥

२० अनुयोग (४) द्वार

अनुयोग–जो महान् अर्थ का अणु–(लघु)सूत्र के साथ योग– सम्बन्ध हो, अथवा अनुरूप योग हो, अथवा अर्थ का सूत्र के साथ अनुकूल सम्बन्ध हो, अथवा सूत्र अर्थ का व्याख्यान, अथवा सूत्र का विस्तार से अर्थ प्रतिपादन करना उसको अनुयोग कहते हैं। इस के चार भेद हैं– १ चरणकरणानुयोग, २ धर्मकथा (प्रथमा) नुयोग, ३गणिता (काला) नुयोग और ४ द्रव्यानुयोग।

१ चरणकरणानुयोग– आचार वचन– जो आ-

चाराङ्गादि कालिक श्रुत अर्थात् साधु मुनिराज का पंच महाव्रत, श्रावक के बारह व्रत, अगार धर्म और अणगार धर्म आदि का जो वर्णन हो उस को चरण करणानुयोग कहते हैं। इस अनुयोग में नीति की प्रधानता है। इस का फल प्रमाद की निवृत्ति और अप्रमाद की प्राप्ति है॥

२ धर्मकथा (प्रथमा) नुयोग– आख्यायिकावचन– जो ऋषिभाषित शास्त्र—ज्ञाताधर्मकथाङ्ग आदि, और ग्रन्थ– त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र तथा मोक्ष गामी जीवों का भूत भविष्यत् वर्त्तमान काल सम्बन्धी वर्णन हो उस को धर्मकथानुयोग कहते हैं। इस अनुयोग में अलङ्कार शास्त्र की प्रधानता है। इस का फल विषय कषाय की निवृत्ति और उपशम वैराग्य की प्राप्ति है॥

३ गणिता (काला) नुयोग– संख्याशास्त्रवचन–जो सूर्यप्रज्ञप्ति आदि सूत्र तथा नरक तिर्यञ्च मनुष्य और देवों के सुख दुःख अवगाहना आयुष्य आदि का वर्णन हो, अथवा द्वीप समुद्र आदि तीन लोक (स्वर्ग मर्त्य पाताल) का वर्णन हो, अथवा गाङ्गेय भङ्ग आदि भङ्ग जाल का वर्णन हो उस को गणितानुयोग कहते हैं। इस अनुयोग में परिकर्माष्टक (गणित शास्त्र)

की प्रधानता है। इस का फल चित्तव्यग्रता की निवृत्ति और चित्त की एकाग्रता की प्राप्ति है।

४ द्रव्यानुयोग– दृष्टिवाद वचन– जो षड् द्रव्य का विचार; सात नय, नव पदार्थ, पञ्चास्तिकाय और प्रमाण आदि निश्चय नयों का कथन है उस को द्रव्यानुयोग कहते हैं। इस में न्याय शास्त्र की प्रधानता है। इस का फल संशयादि दोषों की निवृत्ति और सम्यक्त्व की निर्मलता की प्राप्ति है॥

२१ जागरणा (३) द्वार

जागरणा– निद्रा के क्षय होने पर जो जागृत होना अर्थात् जागना उस को जागरणा कहते हैं। इस के तीन भेद हैं– १ धर्म जागरणा, २ अधर्म जागरणा और ३ कुटुम्ब जागरणा।

१ धर्म जागरणा– धर्म चिन्तन के लिए जागना उस को धर्म जागरणा कहते हैं। इस के तीन भेद हैं- १ बुद्ध जागरणा, २ अबुद्ध जागरणा और ३ सुदक्ष जागरणा। १ बुद्ध जागरणा-- जो अरिहन्त भगवान, उत्पन्न हुए केवलज्ञान और केवल दर्शन को धारण करने वाले यावत् सब भाव को जानने वाले तथा सब पदार्थ को देखने वाले और दूर हुई है अज्ञान रूप

निद्रा जिन की ऐसे बुद्ध (केवल ज्ञानी) भगवान् की
जागरणा (प्रबोध) है उस को बुद्ध जागरणा कहते हैं
२ अबुद्ध जागरणा— अनगार भगवान ईर्या समि
वाले यावत् गुप्त ब्रह्मचारी जो ये अबुद्ध अर्थात् केव
ज्ञान के अभाव से तथा यथासम्भव छद्मस्थ के शे
चार ज्ञान के होने से बुद्धसदृश है, इन छद्मस्थ ज्ञान
वाले अबुद्धों (बुद्धसदृशों) की जो जागरणा है उस
अबुद्ध जागरणा कहते हैं। ३ सुदक्ष जागरणा— जो
ये श्रमणोपासक अभिगत जीवाजीव यावत् श्रावकपन
को पालते हुए विचरते हैं, इन सुदक्षों की जो जागरणा
है उस को सुदक्ष जागरणा कहते हैं। इस का फल
कर्मों की निर्जरा होना है।

२ अधर्म जागरणा— अधर्म चिन्तन के लिए की
हुई जागरणा को अधर्म जागरणा कहते हैं। इस का
फल महान् संसार की वृद्धि है।

३ कुटुम्ब जागरणा— कुटुम्ब चिन्तन के लिए की
हुई जागरणा को कुटुम्ब जागरणा कहते हैं। इस
का भी फल संसार की वृद्धि है।

॥ इति इक्कीस द्वार संपूर्ण ॥

---

१ यह नञ् सदृशता का वाचक है इसलिए अबुद्ध शब्द का
अर्थ 'बुद्धसदृश' ऐसा होगा।

सम्यग्दृष्टि के लक्षण—

नय–भंग–पमाणेहिं, जो अप्पा सायवायभावेणं।
जाणइ मोक्खसरूवं, सम्मदिट्ठी उ सो नेओ॥१॥

अर्थ– जो जीव नयों से भंगों से प्रमाणों से और स्याद्वादपद्धति से मोक्ष के स्वरूप को जाने, वह सम्यग्दृष्टि कहलाता है ॥१॥

ग्रन्थ प्रशस्तिः —

दोहा.

नय निक्षेप प्रमाण को संग्रह अति सुख कार।
कीना बीकानेर में आनन्द हिरदे धार ॥ १॥
जिन आगम को देखकर, और ग्रन्थ आधार।
यथामति संग्रह कियो, स्वपर को हितकार ॥२॥
दृष्टिदोष परमाद से, भूलचूक रहि होय।
अरिहंत सिद्ध की साखसे, मिथ्या दुष्कृत मोय॥३॥
न्यूनाधिक विपरीतता, यत् किञ्चित् दरसाय।
सो सज्जन सुध भावसा, जलदी देहु बताय॥४॥
अभिनिवेश म्हारे नहीं, नहीं है खेंचाताण।
कृतज्ञ हूँ मैं तेहनो, ततखिण करूँ प्रमाण ॥ ५॥

पंच परमेष्टी को नमूं, रखुं जिन आज्ञा हाल।
श्रीजिनधर्म प्रसाद से, वरते मंगल माल ॥६॥

आन्तिम मङ्गलम् –

ब्राह्मी चन्दनबालिका भगवती राजीमती द्रौपदी,
कौशल्या च मृगावती च सुलसा सीता च भद्रा
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता चूला प्रभावत्यपि,
पद्मावत्यपि सुन्दरी दिनमुखे कुर्वन्तु वो मङ्गलम्।

॥ इति नय-प्रमाण का थोकड़ा संपूर्ण ॥

श्रीरस्तु

Printed at the Sethia Jain Printing press,
BIKANER 20—1—23, 3000

अनुवादक

घेवरचन्द बांठिया 'वीरपुत्र' जैन सिद्धान्त शास्त्री

प्रकाशक

गोविन्दराम भनसाली, परमार्थिक संस्था

बीकानेर

वीर संवत् २४८३
विक्रम संवत् २०१४
वतन्त्रता दिवस, १९५७

मूल्य
१)

प्रथमावृत्ति
१०००

दो शब्द

इस पुस्तक में भवन द्वार और सभा द्वार ये दो थोकड़े दिये गये हैं। ये दोनों थोकड़े श्री जीवाभिगम सूत्र और जम्बूद्वीप पण्णत्ति सूत्र आदि कई शास्त्रों से संकलित किये गये हैं। इनमें देवलोक, देवलोकों की लम्बाई चौड़ाई, देव, देवों की ऋद्धि, देवों का परिवार, देवों की संख्या, द्वीप समुद्र, द्वीप समुद्रों की लम्बाई चौड़ाई, राजू, राजू का परिमाण आदि का वर्णन दिया गया है। तीर्थंकर भगवान् सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतरागी होते हैं। वे पदार्थों का जैसा स्वरूप अपने ज्ञान में देखते हैं वैसा ही भव्य जीवों के कल्याणार्थ फरमाते हैं। वे वीतराग अर्थात् रागद्वेष रहित अतएव निःस्वार्थ होते हैं। इसलिए अन्यथा वचन (मृषा वचन) कहने का कोई कारण एवं प्रयोजन नहीं है। अतः उनके वचनों में किसी प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए अपितु श्रद्धा को दृढ़ रखना चाहिए। श्रद्धावान् व्यक्ति में ही समकित होती है। यथा—

जीवाइ नव पयत्थे, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं।
भावेण सद्दहंते, अयाणमाणे वि सम्मत्तं॥

अर्थात्—जो जीवादि नव पदार्थों को जानता है, उसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है। जीवादि नव पदार्थों को नहीं जानने वाले को

यदि शुद्ध अन्तःकरण से श्री जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कथित तत्वों पर श्रद्धा रखते हैं तो उन्हें भी सम्यक्त्व प्राप्त होता है। यथा—

सव्वाइं जिणेसर भासियाइं, वयणाइं नन्नहा हुंति ।
इय बुद्धि जस्स मणे, सम्मत्तं निचलं तस्स ॥

अर्थात्—जिनेन्द्र भगवान् के कहे हुए सभी वचन सत्य हैं ऐसी जिसकी बुद्धि हो उसे निश्चय से सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

शास्त्रीय विषय गहन होने के कारण यदि कहीं पर कोई बात सहसा समझ में न आवे तो शास्त्रज्ञ मुनि महात्माओं से एवं विद्वानों से जिज्ञासु बुद्धि से पूछ कर तत्त्व का निर्णय करना चाहिए।

आशा है जैन समाज और थोकड़ों में रुचि रखने वाले बन्धु इन थोकड़ों से यथेष्ट लाभ उठा कर प्रकाशक और सम्पादक के परिश्रम को सफल बनायेंगे।

आभार

हमारे महोभाग्य से प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय पंडितरत्न पूज्य उपाचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्री गणेशीलालजी महाराज साहब के आज्ञानुवर्ती शास्त्र मर्मज्ञ पंडित मुनि श्री पन्नालालजी म० सा० हमारे यहां बीकानेर में विराजते हैं। महाराज सा० को शास्त्रों का एवं शास्त्रीय स्थलों के मर्म का गहरा ज्ञान है। इसी प्रकार आपको पुरानी धारणाओं का और बोल थोकड़ों का भी गहरा ज्ञान है। सैकड़ों थोकड़े आपको कण्ठस्थ आते हैं। साधुवर्ग और श्रावकवर्ग के प्रति आपकी सदा यह हार्दिक इच्छा और अन्तःप्रेरणा रही है कि वह इन बोल थोकड़ों को सीखें। अतएव इन थोकड़ों के संकलन और संशोधन में उक्त मुनिश्री का हमें अमूल्य सहयोग एवं सहायता मिली है अथवा यों कहना चाहिए कि पंडित मुनिश्री की कृपा का ही यह फल है कि हम इन थोकड़ों को इस रूप में रखने में समर्थ हो सके हैं। इन थोकड़ों के संकलन और संशोधन में मुनिश्री ने जो परिश्रम उठाया है उसके लिए हम मुनिश्री के अत्यन्त आभारी हैं।

प्रूफ संशोधन आदि की पूर्ण सावधानी रखते हुए भी दृष्टि-दोष से कोई अशुद्धि रह गई हो या अशुद्धि नजर आवे तो

यदि शुद्ध अन्तःकरण से श्री जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कथित तत्त्वों पर श्रद्धा रखते हैं तो उन्हें भी सम्यक्त्व प्राप्त होता है। यथा—

सव्वाइ जिणेसर भासियाइं, वयणाइं नन्नहा हुंति।
इय बुद्धि जस्स मणे, सम्मत्तं निच्चलं तस्स॥

अर्थात्—जिनेन्द्र भगवान् के कहे हुए सभी वचन सत्य हैं ऐसी जिसकी बुद्धि हो उसे निश्चय से सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

शास्त्रीय विषय गहन होने के कारण यदि कहीं पर कोई बात सहसा समझ में न आवे तो शास्त्रज्ञ मुनि महात्माओं से एवं विद्वानों से जिज्ञासु बुद्धि से पूछ कर तत्त्व का निर्णय करना चाहिए।

आशा है जैन समाज और थोकड़ों में रुचि रखने वाले बन्धु इन थोकड़ों से यथेष्ट लाभ उठा कर प्रकाशक और संपादक के परिश्रम को सफल बनावेंगे।

प्रार्थी—
भैंरूदान सेठिया 'वीरपुत्र'
न्याय व्याकरण तीर्थ, सिद्धान्त शास्त्री
बीकानेर

आभार

हमारे अहोभाग्य से प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय पंडितरत्न पूज्य उपाचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्री गणेशीलालजी महाराज साहब के आज्ञानुवर्ती शास्त्र मर्मज्ञ पंडित मुनि श्री पन्नालालजी म० सा० हमारे यहां बीकानेर में विराजते हैं। महाराज सा० को शास्त्रों का एवं शास्त्रीय स्थलों के मर्म का गहरा ज्ञान है। इसी प्रकार आपको पुरानी धारणाओं का और बोल थोकड़ों का भी गहरा ज्ञान है। सैकड़ों थोकड़े आपको कण्ठस्थ आते हैं। साधुवर्ग और श्रावकवर्ग के प्रति आपकी सदा यह हार्दिक इच्छा और अन्तःप्रेरणा रही है कि वह इन बोल थोकड़ों को सीखे। अतएव इन थोकड़ों के संकलन और संशोधन में उक्त मुनिश्री का हमें अमूल्य सहयोग एवं सहायता मिली है अथवा यों कहना चाहिए कि पंडित मुनिश्री की कृपा का ही यह फल है कि हम इन थोकड़ों को इस रूप में रखने में समर्थ हो सके हैं। इन थोकड़ों के संकलन और संशोधन में मुनिश्री ने जो परिश्रम उठाया है उसके लिए हम मुनिश्री के अत्यन्त आभारी हैं।

प्रूफ संशोधन आदि की पूर्ण सावधानी रखते हुए भी दृष्टिदोष से कोई अशुद्धि रह गई हो या अशुद्धि नजर आवे तो

पाठक हमें सूचित करने की कृपा करें ताकि आगामी आवृत्ति में उचित संशोधन कर दिया जाय। और पाठक शुद्ध कर पढ़ने की कृपा करें।

आशा है जैन समाज इन थोकड़ों से लाभ उठाएगी।

निवेदक—

गोविन्दराम भीखनचन्द भंसाली

ट्रस्टी श्री गोविन्दराम भणसाली पारमार्थिक संस्था

बीकाने

मङ्गलाचरण

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं, सालोक मालोकितम् ।
साक्षाद् येन यथा स्वयं करतले, रेखात्रयं साङ्गुलि ॥
रागद्वेष भयामयान्तक जरा लोलत्व लोभादयः ।
नालं यत् पद लंघनाय स महादेवो मया वन्द्यते ॥ १ ॥

यस्माद् गौतम शङ्कर प्रभृतयः प्राप्ता विभूतिं पराम् ।
नाभेयादि जिनास्तु शाश्वत पदं लोकोत्तरं लेभिरे ॥
स्पष्टं यत्र विभाति विश्वमखिलं, देहो यथा दर्पणे ।
तज्ज्योति प्रणमाम्यहं त्रिकरणैः स्वात्मोपलब्धिहेतवे ॥ २ ॥

भावार्थ— जिसने हाथ की अङ्गुली सहित तीन रेखाओं के समान भूत भविष्यत और वर्तमान इन तीनों काल सम्बन्धी तीनों लोक (अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक अर्थात् नरक, स्वर्ग और मनुष्यलोक) और अलोक को साक्षात् देख लिया है तथा जिसको राग, द्वेष, भय, रोग, जरा, मरण, तृष्णा, लालच आदि जीत नहीं सकते उस महादेव अर्थात् देवाधिदेव तीर्थङ्कर भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

पाठक हमें सूचित करने की कृपा करें ताकि आगामी आवृत्ति में उचित संशोधन कर दिया जाय। और पाठक शुद्ध कर पढ़ने की कृपा करें।

आशा है जैन समाज इन थोकड़ों रो लाभ उठाएगी।

निवेदक—

गोविन्दराम भीखनचन्द भंसाली

ट्रस्टी श्री गोविन्दराम भंसाली पारमार्थिक संस्था

बीकानेर

मङ्गलाचरण

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं, सालोक मालोकितम् ।
साक्षाद् येन यथा स्वयं करतले, रेखात्रयं साङ्गुलि ॥
रागद्वेष भयामयान्तक जरा लोलत्व लोभादयः ।
नालं यत् पद लंघनाय स महादेवो मया वन्द्यते ॥ १ ॥

यस्माद् गौतम शङ्कर प्रभृतयः प्राप्ता विभूतिं पराम् ।
नाभेयादि जिनास्तु शाश्वत पदं लोकोत्तरं लेभिरे ॥
स्पष्टं यत्र विभाति विश्वमखिलं, देहो यथा दर्पणे ।
तज्ज्योति प्रणमाम्यहं त्रिकरणैः स्वात्मीष्टसिद्धये ॥ २ ॥

भावार्थ—जिसने हाथ की अङ्गुली सहित तीन रेखाओं के समान भूत भविष्यत और वर्तमान इन तीनों काल सम्बन्धी तीनों लोक (अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और तिर्च्छालोक अर्थात् नरक, स्वर्ग और मनुष्यलोक) और अलोक को साक्षात् देख लिया है तथा जिसको राग, द्वेष, भय, रोग, जरा, मरण, तृष्णा, लालच आदि जीत नहीं सकते उस महादेव अर्थात् देवाधिदेव तीर्थङ्कर भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

जिस ज्योति से गौतम और शङ्कर आदि उत्तम पुरुषों ने परम ऐश्वर्य प्राप्त किया तथा प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामी आदि जिनेश्वरों ने सर्वश्रेष्ठ सिद्ध पद प्राप्त किया और जिस ज्योति में समस्त विश्व दर्पण में शरीर के प्रतिबिम्ब की तरह स्पष्ट झलकता है, उस ज्योति को मैं मन वचन और काया से अपनी इष्ट सिद्धि के लिये नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥

भवन द्वार का थोकड़ा

१— नाम द्वार—अहो भगवान्ः नरक किसे कहते हैं ? हे गौतम ! घोर पापाचरण करने वाले जीव अपने पापों का फल भोगने के लिए अधोलोक के जिन स्थानों में पैदा होते हैं उन्हें नरक कहते हैं अथवा मनुष्य और पशु जहां अपने अपने पापों के अनुसार भयंकर कष्ट उठाते हैं उन्हें नरक कहते हैं।

अहो भगवान् ! वे कितनी हैं ? हे गौतम ! वे सात हैं।

अहो भगवान् ! उनके नाम क्या हैं ? हे गौतम ! उनके नाम इस प्रकार हैं— १ घम्मा, २ वंसा, ३ सीला, ४ अंजना, ५ रिट्ठा, ६ मघा, ७ माघवई।

२— गोत्रद्वार—अहो भगवान् ! उन सातों नरकों का गोत्र क्या है ? हे गौतम ! उनके गोत्र इस प्रकार हैं—१ रत्नप्रभा, २ शर्कराप्रभा, ३ बालुकाप्रभा, ४ पङ्कप्रभा, ५ धूमप्रभा, ६ तमःप्रभा, ७ तमस्तमप्रभा या महातमःप्रभा।

अहो भगवान् ! रत्नप्रभा किसे कहते हैं ? हे गौतम ! पहली नरक के तीन काण्ड हैं—१ खर काण्ड, २ पङ्क बहुल काण्ड और ३ अब्बहुल काण्ड। खर काण्ड १६००० सोलह हजार योजन का मोटा है। उसमें जले हुए कोयले के

समान रत्न हैं। उन रत्नों की प्रभा पड़ती है। इसलिए पहले नरक को रत्नप्रभा कहते हैं।

अहो भगवान्! शर्कराप्रभा किसे कहते हैं? हे गौतम! दूसरी नरक में तीखे तीखे कंकर हैं। वे छुरी की धार और तलवार की धार से भी अधिक तीखे हैं। ऐसे कंकरों का वहां तला है, पीठिका है, इसलिए उसे शर्कराप्रभा कहते हैं।

अहो भगवान्! बालुकाप्रभा किसे कहते हैं? हे गौतम! तीसरी नरक में बालू रेत अधिक है। वह रेत भड़भूंजा की भाड़ (भट्ठी) और लोहार की धमण से भी अनन्तगुणा अधिक तपती है, इसलिए तीसरी नरक को बालुकाप्रभा कहते हैं।

अहो भगवान्! पङ्कप्रभा किसे कहते हैं? हे गौतम! चौथी नरक में लोहू और मांस का कीचड़ अधिक है। इसलिए इसे पङ्कप्रभा कहते हैं।

अहो भगवान्! धूमप्रभा किसे कहते हैं? हे गौतम! पांचवीं नरक में धूएँ की अधिकता है। वह धूआं सोमलखार, आक और धतूरे के धूएँ से भी अधिक खारा है, इसलिए इसे धूमप्रभा कहते हैं।

अहो भगवान्! तमःप्रभा किसे कहते हैं? हे गौतम! छठे नरक में अन्धकार बहुत है। जैसे भादवा आठ मास की अमावस्या की रात्रि में मेघ छाये हुए हों। उससे अनन्त गुणा अन्धकार वहां है, इसलिए उसे तमःप्रभा कहते हैं।

अहो भगवान्! तमस्तमःप्रभा किसे कहते हैं? हे गौतम! गाढ अन्धकार से परिपूर्ण होने के कारण सातवीं नरक को तमस्तमःप्रभा कहते हैं। इसको महातमःप्रभा भी कहते हैं, उसका अर्थ है जहां घोर एवं गाढ अन्धकार की अधिकता हो। जैसे श्रावण भाद्र मास की अमावास्या की रात्रि में खूब बादल छाये हुए हों, उस समय सातवें भोंयरे (तलघर) में जैसा अन्धकार हो, उससे भी अनन्तगुणा अन्धकार सातवीं नरक में है। इसलिए उसे तमस्तमःप्रभा या महातमःप्रभा कहते हैं।

अहो भगवान्! इन नरकों के नाम और गोत्र अलग अलग क्यों कहे गये हैं। हे गौतम! शब्दार्थ से सम्बन्ध न रखने वाली अनादिकाल से प्रचलित संज्ञा को नाम कहते हैं और शब्दार्थ का ध्यान रख कर किसी वस्तु का नाम दिया जाता है उसे गोत्र कहते हैं अर्थात् नाम अर्थ रहित होता है और गोत्र अर्थ युक्त होता है। इसलिए घम्मा आदि सात पृथ्वियों के नाम हैं और रत्नप्रभा आदि गोत्र हैं।

३— पिण्डद्वार—पहली रत्नप्रभा नरक का पिण्ड एक लाख अस्सी हजार योजन का है। इसमें ऊपर की ठीकरी (ठोस भाग) एक हजार योजन की है और नीचे की ठीकरी भी एक हजार योजन की है। बीच में एक लाख अठहत्तर हजार की पोलार है। उसमें तेरह ❀ पाथड़े (प्रस्तर या प्रतर) हैं और बारह आंतरे (अन्तर) हैं।

❀ नरक के एक एक परदे के बाद जो स्थान होता है, उसको

दूसरी शर्कराप्रभा नरक का पिण्ड एक लाख बत्तीस हजार योजन का है। इसमें एक हजार योजन की ऊपर ठीकरी है और एक हजार योजन की नीचे ठीकरी है। बीच में एक लाख तीस हजार की पोलार है, इसमें ११ पाथड़े और १० आन्तरे हैं।

तीसरी वालुकाप्रभा नरक का पिण्ड एक लाख अट्ठाईस हजार योजन का है। इसमें से ऊपर एक हजार योजन की ठीकरी है और नीचे एक हजार योजन की ठीकरी है। बीच में एक लाख छब्बीस हजार योजन की पोलार है। इसमें नौ पाथड़े और आठ आन्तरे हैं।

चौथी पंकप्रभा नरक का पिण्ड एक लाख बीस हजार योजन का है। इसमें से ऊपर एक हजार योजन की ठीकरी है और नीचे एक हजार योजन की ठीकरी है। बीच में एक लाख अठारह हजार योजन की पोलार है, इसमें सात पाथड़े और छः आन्तरे हैं।

पांचवीं धूमप्रभा नरक का पिण्ड एक लाख अठारह हजार योजन का है। इसमें से ऊपर एक हजार योजन की ठीकरी

पाथड़ा (प्रस्तर या स्तर) कहते हैं। रत्नप्रभा से लेकर छठी तमःप्रभा तक प्रत्येक नरक में दो तरह के नरकावास हैं—आवलिक प्रविष्ट और प्रकीर्णक। जो नरकावास चारों दिशाओं में पंक्ति रूप से रहे हुए हैं उनको आवलिका प्रविष्ट कहते हैं और जो पंक्ति रूप से नहीं हैं किन्तु इधर उधर बिखरे हुए हैं उनको प्रकीर्णक कहते हैं। तमस्तमा में [illegible] है।

है और नीचे एक हजार योजन की ठीकरी है। बीच में एक लाख सोलह हजार योजन की पोलार है, उसमें पांच पाथड़े और चार आन्तरे हैं।

छठी तमःप्रभा नरक का पिण्ड एक लाख सोलह हजार योजन का है। उसमें से ऊपर एक हजार योजन की ठीकरी है और नीचे भी एक हजार योजन की ठीकरी है। बीच में एक लाख चौदह हजार योजन की पोलार है, उसमें तीन पाथड़े और दो आन्तरे हैं।

सातवी तमस्तमप्रभा (महातमःप्रभा) नरक का पिण्ड एक लाख आठ हजार योजन का है। उसमें से ऊपर ५२॥ साढे बावन हजार योजन की ठीकरी है और नीचे भी ५२॥ साढे बावन हजार योजन की ठीकरी है। बीच में तीन हजार योजन की पोलार है। उसमें एक ही पाथड़ा है, आन्तरा नहीं है।

(४) आंतराद्वार (अन्तर द्वार)—अहो भगवान्! नरक के एक पाथड़े का दूसरे पाथड़े से कितना अन्तर है? हे गौतम! पहली नरक में एक पाथड़े से दूसरे पाथड़े का अन्तर ग्यारह हजार पांच सौ तियासी योजन और एक योजन का तीसरा भाग ११५८३⅓ है। इस तरह सब पाथड़ों का अन्तर है। दूसरी नरक में हर एक पाथड़े का अन्तर नौ हजार सात सौ ९७०० योजन का है। तीसरी नरक में प्रत्येक पाथड़े का अन्तर बारह हजार तीन सौ पचहत्तर १२३७५ योजन का है। चौथी नरक में प्रत्येक पाथड़े का अन्तर सोलह हजार एक सौ छासठ योजन और एक

योजन के तीन भाग में से दो भाग १६१६६⅔ योजन का है पांचवीं नरक में प्रत्येक पाथड़े का अन्तर सवा पचीस हजार २५२५० योजन का है। छठी नरक में प्रत्येक पाथड़े का अन्तर साढे बावन हजार ५२५०० योजन का है। सातवीं नरक में अंतर नहीं है क्योंकि वहां एक ही पाथड़ा है।

(५) बाहल्य (मोटाई) द्वार—रत्नप्रभा की मोटाई (जाडापणा) एक लाख अस्सी हजार योजन की है। शर्करप्रभा की मोटाई एक लाख बत्तीस हजार योजन है। वालुकाप्रभा की मोटाई एक लाख अट्ठाईस हजार योजन की है। पंकप्रभा की मोटाई एक लाख बीस हजार योजन की है। धूमप्रभा की मोटाई एक लाख अठारह हजार योजन की है। तमःप्रभा की मोटाई एक लाख सोलह हजार योजन की है। तमस्तमःप्रभा (महातमःप्रभा) की मोटाई एक लाख आठ हजार योजन की है।

(६) काण्ड द्वार—अहो भगवान्! पहली नरक में कितने काण्ड हैं? हे गौतम! तीन काण्ड हैं—खरकाण्ड, पङ्कबहुल काण्ड और जल बहुल काण्ड। खरकाण्ड कठिन पृथ्वी रूप है, यह सोलह हजार योजन का है। इसमें अनेक प्रकार के रत्नों के समान रत्न हैं। दूसरा पङ्कबहुल काण्ड है, इसमें कीचड़ सरीखे पुद्गलों की अधिकता है। यह चौरासी हजार योजन का है। तीसरा जल बहुल काण्ड है। इसमें पानी सरीखे पुद्गलों की अधिकता है। यह अस्सी हजार योजन का है। दूसरी नरक से

* काण्ड—भूमि के भाग विशेष को काण्ड कहते हैं।

लेकर सातवीं नरक तक छह नरकों में काण्ड नहीं हैं, वे सब एक ही प्रकार की हैं।

(७) आधार द्वार—अहो भगवान्! पहली नरक किसके आधार पर रही हुई है? हे गौतम! पहली नरक के नीचे बीस हजार योजन की मोटी घनोदधि है। उसके नीचे असंख्यात योजन की मोटी (जाडी) घनवायु है। उसके नीचे असंख्यात योजन की मोटी तनुवायु है। उसके नीचे असंख्यात योजन की मोटी आकाशास्तिकाय है। उसके नीचे दूसरी नरक है। दूसरी नरक के नीचे पहली नरक की तरह घनोदधि, घनवायु, तनुवायु और आकाशास्तिकाय है। इसी तरह सातों नरक के नीचे आधार कह देना चाहिए। नीचे अलोक है।

(८) विवरण द्वार—नरक तो देश के समान है। नरकावासा नगर के समान हैं। और कुम्भियां घर के समान हैं। वे कुम्भियां वज्ररत्न की बनी हुई हैं। वे फोडने से फूटती नहीं है और तोड़ने से टूटती नहीं हैं। उनमें से कुछ कुम्भियां तिजारा (पोस्त-अफीम) की डोडी के आकार हैं। कितनीक कुम्भियां चमड़े की कुप्पी के आकार हैं। कितनीक ऊंट की गर्दन के आकार हैं। कितनीक तेल के डिब्बे के आकार हैं। उन कुम्भियों में पापी जीव आकर उत्पन्न होते हैं। उनमें वे अत्यन्त दुःख पाते हैं। उनकी अवगाहना बड़ी होने से और कुंभियों का मुख संकड़ा होने से वे उनमें से बाहर नहीं निकल सकते हैं। फिर परमाधामी देव आकर उनके टुकड़े टुकड़े करके उनको कुंभियों में से बाहर

निकालते हैं। बाहर निकालते ही वे पारे के समान वापिस मिल जाते हैं। तब उनको कुंभी में डाल कर पकाते हैं। परमाधामी देव उनको मारते हैं, पीटते हैं और अनेक प्रकार की पीड़ा पहुंचाते हैं। वे दस प्रकार की क्षेत्रवेदना का निरन्तर अनुभव करते हैं। वे वेदनाएं इस प्रकार हैं—१. क्षुधा वेदना—नारकी जीवों में अनन्त भूख होती है। असत् कल्पना से कल्पना कीजिये कि जैसे कोई देव संसार की सारी खाने की चीजों को इकट्ठा करके एक नैरयिक को दे देवे तो भी उसकी भूख न मिटे। नारकी जीवों में इतनी भूख है किन्तु उन्हें खाने को एक भी दाना नहीं मिलता। २. नारकी जीवों में अनन्त तृषा होती है। असत् कल्पना से कल्पना कीजिये कि जैसे कोई देव सब नदी समुद्रों का पानी इकट्ठा करके एक नैरयिक को दे देवे तो भी उसकी प्यास न बुझे। नारकी जीवों में इतनी प्यास है किन्तु उन्हें पीने को एक बूंद भी पानी नहीं मिलता। ३* नारकी जीवों में अनन्त शीत

* पहली, दूसरी और तीसरी नरक में शीत योनि वाले नैरयिक हैं उन्हें उष्ण की वेदना होती है। चौथी नरक में शीत और उष्ण दोनों वेदनाएं होती हैं, वहां शीत योनि वाले नैरयिक ज्यादा हैं और उष्ण योनि वाले थोड़े हैं। पांचवीं नरक में उष्ण और शीत दोनों वेदनाएं होती हैं, यहां शीत योनि वाले नैरयिक थोड़े हैं और उष्ण योनि वाले ज्यादा हैं। छठी नरक में उष्ण योनि वाले नैरयिक हैं उन्हें शीत वेदना होती है। सातवीं नरक में महा उष्ण योनि वाले नैरयिक हैं, उन्हें महा शीत वेदना होती है।

शीत योनि वाले नैरयिकों को उष्ण की वेदना होती है और उष्ण योनि वाले नैरयिकों को शीत की वेदना होती है।

वेदना है। जैसे कोई लोहार लोह के गोले को तपा कर खूब गर्म करे और पन्द्रह दिन तक कूट कर उसे खूब मजबूत करें। ऐसे तपे हुए लोह के गोले को यदि नरक में रख दिया जाय तो वह नरक की गर्मी से गल कर क्षण भर में पानी हो जाय। दूसरा दृष्टान्त जैसे किसी वन में आग लग गई हो। उस आग की लपट से घबराया हुआ कोई हाथी भूख प्यास से पीड़ित होकर भागता हुआ जंगल से बाहर निकले। वहां कोई सरोवर देखकर धीरे-धीरे उसमें उतरे और उसमें बैठे तो उसके शरीर की उष्णता दूर हो जाय, पानी पीने से उसकी प्यास दूर हो जाय, कमल खाने से भूख मिट जाय। इसके बाद वह बाहर निकल कर किसी वृक्ष की ठण्डी छाया में बैठ जाय तो वह हाथी जैसा आनन्द और सुख मानता है। उसी तरह असत्कल्पना से किसी नारकी जीव को नरक से बाहर निकाल कर येल की भट्टी में, ईंटों की भट्टी में, चूने की भट्टी में, रख दिया जाय तो वह नेरीया उस हाथी के समान सुख माने और उसे वहीं नींद भी आ जाय। तीसरा दृष्टान्त-ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के समय जब आकाश में कोई बादल न हो, वायु बिल्कुल बन्द हो, सूर्य प्रचण्ड रूप से तप रहा हो, उस समय पित्त प्रकृति वाला व्यक्ति जैसी उष्णवेदना का अनुभव करता है। उष्णवेदना वाली नरकों में उससे भी अनन्त गुणा वेदना होती है। यदि उन जीवों को नरक से निकाल कर प्रबल रूप से जलते हुए खैर के अङ्गारों में डाल दिया जाय तो वे अमृत-रस से स्नान किये हुए पुरुष की तरह अत्यन्त सुख का अनुभव

निकालते हैं। बाहर निकालते ही वे पारे के समान वापिस मिल जाते हैं। तब उनको कुंभी में डाल कर पचाते हैं। परमाधामी देव उनको मारते हैं, पीटते हैं और अनेक प्रकार की पीड़ा पहुंचाते हैं। वे इस प्रकार की क्षेत्रवेदना का निरन्तर अनुभव करते हैं। वे वेदनाएं इस प्रकार हैं—१. क्षुधा वेदना—नारकी जीवों में अनन्त भूख होती है। असत् कल्पना से कल्पना कीजिये कि जैसे कोई देव संसार की सारी खाने की चीजों को इकट्ठी करके एक नैरयिक को दे देवे तो भी उसकी भूख न मिटे। नारकी जीवों में इतनी भूख है किन्तु उन्हें खाने को एक भी दाना नहीं मिलता। २. नारकी जीवों में अनन्त तृषा होती है। असत् कल्पना से कल्पना कीजिये कि जैसे कोई देव सब द्वीप समुद्रों का पानी इकट्ठा करके एक नैरयिक को दे देवे तो भी उसकी प्यास न बुझे। नारकी जीवों में इतनी प्यास है किन्तु उन्हें पीने को एक बुंद भी पानी नहीं मिलता। ३* नारकी जीवों में अनन्त उष्ण

* पहली, दूसरी और तीसरी नरक में शीत योनि वाले नेरीया हैं उन्हें उष्ण की वेदना होती है। चौथी नरक में शीत और उष्ण दोनों वेदनाएँ होती हैं, वहां शीत योनि वाले नेरीया ज्यादा हैं और उष्ण योनि वाले थोड़े हैं। पांचवीं नरक में उष्ण और शीत दोनों वेदनाएं होती हैं, वहां शीत योनि वाले नेरीया थोड़े हैं और उष्ण योनि वाले बहुत हैं। छठी नरक में सिर्फ उष्ण योनि वाले नेरीया हैं उन्हें शीत की वेदना होती है। सातवीं नरक में महा उष्ण योनि वाले नेरीया हैं, उन्हें महा उष्ण वेदना होती है।

शीत योनि वाले नेरीयों को उष्ण की वेदना होती है और उष्ण योनि वाले नेरीयों को शीत की वेदना होती है।

वेदना है। जैसे कोई लोहार लोह के गोले को तपा कर खूब गर्म करे और पन्द्रह दिन तक कूट कर उसे खूब मजबूत करे। ऐसे तपे हुए लोह के गोले को यदि नरक में रख दिया जाय तो यह नरक की गर्मी से गल कर क्षण भर में पानी हो जाय। दूसरा दृष्टान्त जैसे किसी वन में आग लग गई हो। उस आग की लपट से घबराया हुआ कोई हाथी भूख प्यास से पीड़ित होकर भागता हुआ जंगल से बाहर निकले। वहां कोई सरोवर देखकर धीरे-धीरे उसमें उतरे और उसमें बैठे तो उसके शरीर की उष्णता दूर हो जाय, पानी पीने से उसकी प्यास दूर हो जाय, कमल खाने से भूख मिट जाय। इसके बाद वह बाहर निकल कर किसी वृक्ष की ठण्डी छाया में बैठ जाय तो वह हाथी जैसा आनन्द और सुख मानता है। इसी तरह असत्कल्पना से किसी नारकी जीव को नरक से बाहर निकाल कर केलू की भट्टी में, ईंटों की भट्टी में, चूने की भट्टी में, रख दिया जाय तो वह नेरीया उस हाथी के समान सुख माने और उसे वहीं नींद भी आ जाय। तीसरा दृष्टान्त-ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के समय जब आकाश में कोई बादल न हो, वायु बिल्कुल बन्द हो, सूर्य प्रचण्ड रूप से तप रहा हो, उस समय पित्त प्रकृति वाला व्यक्ति जैसी उष्णवेदना का अनुभव करता है। उष्णवेदना वाली नरकों में उससे भी अनन्त गुणा वेदना होती है। यदि उन जीवों को नरक से निकाल कर प्रबल रूप से जलते हुए खैर के अङ्गारों में डाल दिया जाय तो वे अमृत-रस से स्नान किये हुए पुरुष की तरह अत्यन्त सुख का अनुभव

करेंगे और इस सुख से उन्हें नींद भी आ जायगी।

नारकी जीवों में अनन्त शीत वेदना है। जैसे कोई लोहा लोहे के गोले को तपा तपा कर एक महीना भर कूटे और उसे मज़ बूत बनावे। उस गोले को यदि नरक में रख दिया जाय तो व तत्क्षण ही ठण्डा हो कर पिघल जाय और पीछा हाथ नहीं आवे दूसरा दृष्टान्त-जैसे पोष माघ मास की आधी रात का समय हो आकाश बादल रहित हो, शरीर को कंपा देने वाली ठण्डी हवा चल रही हो, उस समय में यदि कोई पुरुष हिमालय पर्वत के बर्फीले शिखर पर बैठा हो, अग्नि मकान और वस्त्रादि शीत निवा रण के सभी साधनों से रहित वह व्यक्ति जैसी शीत वेदना का अनुभव करता है, उससे भी अनन्तगुणी वेदना शीतप्रधान नरकों में होती है। यदि उन जीवों को नरक से निकाल कर उस पुरुष के स्थान पर बैठा दिया जाय तो उन्हें परम सुख हो और नींद भी आ जाय। ५ अनन्त परवशता, ६ अनन्त दाह, ७ अनन्त ज्वर, ८ अनन्त खाज खुजली, ९ अनन्त भय, १० अनन्त शोक उन नारकी जीवों में होता है। एक एक नारकी जीव के पांच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानवें हजार पांच सौ चौरासी ५६८९९५८४ तरह के रोग लगे हुए हैं। यह दस प्रकार की क्षेत्र वेदना वे सदा काल भोगते रहते हैं।

९ नरकावास द्वार— सातों नरकों में ८४ लाख नरकावास हैं। पहली नरक में ३० लाख नरकावास हैं, दूसरी में २५ लाख, तीसरी में १५ लाख, चौथी में दस लाख, पांचवीं में तीन लाख, छठी में एक लाख में पांच कम और सातवीं में पांच। ये सब मिला

ता ८४ लाख नरकावास हैं। ये नरकावास अन्दर से गोल हैं, बाहर से चोखूणे हैं और नीचे खुरपा के आकार वाले हैं।

अहो भगवान्! ये नरकावास कितने लम्बे चौड़े हैं? हे गौतम! कितनेक नरकावास संख्यात योजन के हैं और कितनेक असंख्यात योजन के हैं। जघन्य तो जम्बूद्वीप प्रमाण हैं, मध्यम अढाई द्वीप प्रमाण हैं और उत्कृष्ट संख्यात असंख्यात योजन के हैं। कल्पना कीजिये जैसे कोई चपल एवं शीघ्रगति वाला देव ८५०७५० योजन का एक डग भरे-एक कदम रखे, ऐसी तेज गति से वह छह मास तक चले तो संख्याता योजना के नरकावासों का पार आ सकता है किन्तु असंख्याता योजन वाले नरकावासों का पार नहीं पा सकता।

अहो भगवान्! संख्याता योजन वाले नरकावास कितने हैं और असंख्यात योजन वाले कितने हैं? हे गौतम! सब नरकावासों के पांच हिस्से करें। उस में से एक हिस्सा तो संख्याता योजन के हैं और बाकी चार हिस्सा असंख्याता योजन के हैं।

ये नरकावास दो तरह के हैं—पंक्तिबद्ध और पुष्पावकीर्ण (बिखरे हुए फूलों के समान)। अहो भगवान्! पंक्तिबद्ध नरकावास कितने हैं? हे गौतम! जैसे पहले पाथड़े में ४९-४९ चारों दिशा में हैं। ४८-४८ चार कूणा में हैं और एक बीच में है। इस प्रकार पहले पाथड़े में ३८९ पंक्तिबद्ध हैं। आगे एक एक पाथड़े में आठ आठ कम करते हुए गुणपचासवें पाथड़े में पांच नरकावासा रहते हैं। कुल ९६५३ हुए। ये सब पंक्तिबद्ध हैं। बाकी सब पुष्पा-

वेकरणी (फूलों की तरह बिखरे हुए) हैं। पंक्तिबद्ध में तीन प्रकार का संस्थान है—

वट्ट (वृत्त-गोल), तंस (त्र्यंस-तिकोण); चउरंस (चतुरंस-चौरस-चौकोण)। पुष्पावकेरणी नरकावासों का संस्थान नाना प्रकार का है।

१० अलोक द्वार—अहो भगवान् ! पहली नरक से अलोक कितना दूर है ? हे गौतम ! पहली नरक से चारों दिशाओं में बारह बारह योजन दूर है। दूसरी नरक से बारह योजन और दो तिहाई भाग १२⅔ दूर है। तीसरी नरक से तेरह योजन एक तिहाई भाग १३⅓ दूर है। चौथी नरक से चौदह योजन दूर है पांचवीं नरक से चौदह योजन दो तिहाई भाग १४⅔ दूर है। छठी नरक से पन्द्रह योजन एक तिहाई भाग १५⅓ दूर है और सातवीं नरक से सोलह योजन दूर है।

११ वलय द्वार—अहो भगवान् ! प्रत्येक नरक के चारों तरफ कितने वलय हैं ? हे गौतम ! तीन तीन वलय हैं। घनोदधि वलय, घनवात वलय और तनुवात वलय। वे झल्लरी (झालर) के आकार हैं। उनमें बीस बीस बोल पाये जाते हैं, पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और आठ स्पर्श, ये बीस बोल हुए।

अहो भगवान् ? नरक के चारों तरफ जो तीन तीन वलय हैं उनकी मोटाई कितनी है ? हे गौतम ? पहली नरक के चारों तरफ प्रत्येक दिशा में घनोदधि वलय की मोटाई छह योजन है। इसके बाद प्रत्येक नरक में योजन का तीसरा भाग वृद्धि होती

हैं अर्थात् दूसरी नरक में छह योजन दो तिहाई ६⅔। तीसरी नरक में छह योजन दो तिहाई ६⅔। चौथी नरक में सात योजना पांचवीं नरक में सात योजन एक तिहाई ७⅓। छठी नरक में सात योजन दो तिहाई ७⅔। सातवीं नरक में आठ योजन घनोदधि वलय की मोटाई है।

प्रत्येक नरक में घनवात वलय की मोटाई इस प्रकार है— पहली नरक के चारों तरफ प्रत्येक दिशा में घनवातवलय की मोटाई साढ़े चार योजन है। इसके आगे प्रत्येक नरक में एक एक कोस बढ़ता जाता है अर्थात् दूसरी नरक में साढ़े चार योजन और एक कोस। तीसरी नरक में पांच योजन। चौथी नरक में पांच योजन और एक कोस अर्थात् सवा पांच योजन। पांचवीं नरक में साढ़े पांच योजन। छठी नरक में पौने छह योजन और सातवीं नरक में पूरे छह योजन घनवातवलय की मोटाई है।

प्रत्येक नरक में तनुवातवलय की मोटाई इस प्रकार है— पहली नरक के चारों तरफ प्रत्येक दिशा में तनुवातवलय की मोटाई छह कोस है। इसके बाद हर एक नरक में कोस का तीसरा भाग बढ़ता जाता है अर्थात् दूसरी नरक छह कोस एक तिहाई भाग ६⅓। तीसरी नरक में छह कोस दो तिहाई ६ भाग ६⅔। चौथी नरक में सात कोस। पांचवी नरक में सात कोस एक तिहाई भाग ७⅓। छठी नरक में सात कोस दो तिहाई भाग ७⅔ और सातवीं नरक में आठ कोस की मोटाई है।

अथवा इन तीन वलयों की मोटाई इस तरह से कही जाती

है— पहली नरक में घनोदधिवलय की मोटाई छह योजन की है। घनवात वलय की मोटाई साढे चार योजन है और तनुवात वलय की मोटाई डेढ़ योजन की है। इस प्रकार पहली नरक और अलोक के बीच में बारह योजन की दूरी है। दूसरी नरक में घनोदधिवलय की मोटाई छह योजन एक तिहाई भाग ६⅓ है। घनवात वलय की मोटाई पौने पांच योजन है और तनुवात वलय की मोटाई डेढ़ योजन और कोस का एक तिहाई भाग है। तीसरी नरक में घनोदधिवलय की मोटाई छह योजन दो तिहाई ६⅔ है। घनवातवलय की मोटाई पांच योजन है और तनुवातवलय की मोटाई डेढ़ योजन और कोस का दो तिहाई भाग है। चौथी नरक में घनोदधि वलय की मोटाई सात योजन की है। घनवात वलय की मोटाई सवा पांच योजन है और तनुवातवलय की मोटाई पौने दो योजन की है। पांचवी नरक में घनोदधिवलय की मोटाई सात योजन एक तिहाई भाग ७⅓ है। घनवात वलय की मोटाई साढे पांच योजन है और तनुवातवलय की मोटाई पौने दो योजन और एक कोस का तीसरा भाग है। छठी नरक में घनोदधिवलय की मोटाई सात योजन दो तिहाई भाग ७⅔ है। घनवातवलय की मोटाई पौने छह योजन है। और तनुवातवलय की मोटाई पौने दो योजन और एक कोस का दो तिहाई भाग है। सातवीं नरक में घनोदधिवलय की मोटाई आठ योजन की है। घनवातवलय की मोटाई छह योजन की है और तनुवातवलय की मोटाई दो योजन की है।

घनोदधिवलय, घनवातवलय और तनुवातवलय की मोटाई मिलाने से प्रत्येक नरक और अलोकाकाश के बीच का अन्तराल ऊपर लिखे अनुसार निकल आता है। घनोदधि रत्नप्रभा पृथ्वी को घेरे हुए वलयाकार स्थित है। घनवात घनोदधि को घेरे हुए है और तनुवात घनवात को घेरे हुए है। सभी नरकों में यह क्रम है।

१२ पाथड़ा द्वार— पहली नरक में १३ पाथड़े हैं। एक एक पाथड़ा तीन तीन हजार योजन का मोटा है। उसमें से एक हजार योजन की ठीकरी ऊपर छोड़ कर और एक हजार योजन की ठीकरी नीचे छोड़ कर बीच में एक हजार योजन की पोलार है। उसमें नारकी जीव रहते हैं। दूसरी नरक में ११ पाथड़े हैं। तीसरी नरक में ६ पाथड़े हैं। चौथी नरक में ७ पाथड़े हैं। पांचवी नरक में ५ पाथड़े हैं। छठी नरक में तीन पाथड़े हैं और सातवीं नरक में एक ही पाथड़ा है। ये सब मिला कर ४६ पाथड़े हैं।

१३ अवगाहना द्वार—अहो भगवान्! इन पाथड़ों में रहने वाले नारकी जीवों की अवगाहना कितनी है? हे गौतम! पहली नरक में १३ पाथड़े हैं। उनमें से पहले पाथड़े के जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट तीन हाथ की है। दूसरे पाथड़े के जीवों की अवगाहना जघन्य तीन हाथ की, उत्कृष्ट पांच हाथ और ८॥ अंगुल है। तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ७ हाथ और १७ अंगुल की है। चौथे पाथड़े

की उत्कृष्ट अवगाहना दस हाथ और २॥ अंगुल की है। पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १२ हाथ और १० अंगुल की है। छठे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १४ हाथ और १८॥ अंगुल की है। सातवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १७ हाथ और ३ अंगुल की है। आठवें पाथड़े उत्कृष्ट अवगाहना १९ हाथ और ११॥ अंगुल की है। नवमें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २१ हाथ और २० अंगुल की है। दसवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २४ हाथ और ४॥ अंगुल की है। ग्यारहवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २६ हाथ और १३ अंगुल की है। बारहवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २८ हाथ और २१॥ अंगुल की है। तेरहवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ७॥ धनुष और ६ अंगुल की है।

दूसरी नरक में ११ पाथड़े हैं। पहले पाथड़े में रहने वाले नारकी जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना ८॥ धनुष २ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें दो भाग २/११ की है। दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ९ धनुष २२ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें चार भाग ४/११ की है। तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ९॥ धनुष १८ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें छह भाग ६/११ की है। चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १०॥ धनुष १४ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें आठ भाग ८/११ की है। पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ११ धनुष १० अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें दस भाग १०/११ की है। छठे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १२ धनुष ७ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें एक भाग १/११

की है। सातवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १२॥। धनुष ३ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें तीन भाग ३/११ की है। आठवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १३। धनुष १३ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें पांच भाग ५/११ की है। नवमें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १४ धनुष १९ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें सात भाग ७/११ की है। दसवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १४॥। धनुष १५ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें नौ भाग ९/११ की है। ग्यारहवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १५। धनुष १२ अंगुल की है।

तीसरी नरक में ९ पाथड़े हैं। पहले पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १७। धनुष १० अंगुल और एक अंगुल के नवमें छह भाग ६/९ की है। दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १९ धनुष ९ अंगुल और एक अंगुल के नवमें तीन भाग ३/९ की है। तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २०॥। धनुष ८ अंगुल की है। चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २२॥ धनुष ६ अंगुल और एक अंगुल के नवमें छह भाग ६/९ की है। पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २४। धनुष ५ अंगुल और एक अंगुल के नवमें तीन भाग ३/९ की है। छठे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २६ धनुष चार अंगुल की है। सातवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २७॥। धनुष दो अंगुल और एक अंगुल के नवमें छह भाग ६/९ की है। आठवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २९॥ धनुष एक अंगुल और एक अंगुल के नवमें तीन भाग ३/९ की है। नवमें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना

३१। धनुष की है।

चौथी नरक में ७ पाथड़े हैं। पहले पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ३५॥ धनुष २० अंगुल और एक अंगुल के सातवें चार भाग ४/७ की है। दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ४० धनुष १७ अंगुल और एक अंगुल के सातवें एक भाग १/७ की है। तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ४४॥ धनुष १३ अंगुल और एक अंगुल के सातवें पांच भाग ५/७ की है। चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ४६ धनुष १० अंगुल और एक अंगुल के सातवें दो भाग २/७ की है। पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ५३॥ धनुष ६ अंगुल और एक अंगुल के सातवें छह भाग ६/७ की है। छठे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ५८ धनुष ३ अंगुल और एक अंगुल के सातवें तीन भाग ३/७ भाग की है। सातवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ६२॥ धनुष की है।

पांचवीं नरक में ५ पाथड़े हैं। पहले पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ७५ धनुष की है। दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहन ८७॥ धनुष की है। तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १०० धनुष की है। चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ११२॥ धनुष की है। पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १२५ धनुष की है।

छठी नरक में तीन पाथड़े हैं। पहले पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १६६॥ धनुष १६ अंगुल की है। दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २०८॥ धनुष ८ अंगुल की है। तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २५० धनुष की है।

सातवीं नरक में एक पाथड़ा है। उसकी उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुप की है। ॐ

१४ स्थितिद्वार— अब हरेक पाथड़े के नारकी जीवों की स्थिति बताई जाती है— पहली नरक में १३ पाथड़े हैं। उनमें से पहले पाथड़े की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट ६० हजार वर्ष की है। दूसरे पाथड़े की जघन्य स्थिति १० लाख वर्ष की और उत्कृष्ट ६० लाख वर्ष की है। तीसरे पाथड़े की जघन्य स्थिति ६० लाख वर्ष की और उत्कृष्ट करोड़पूर्व की है।

ॐ पहली नरक के हरेक पाथड़े में दो हाथ अर्थात् आधा धनुप और ८॥ अङ्गुल की बढ़ती जाती है। दूसरी नरक के हरेक पाथड़े में दो हाथ बीस अङ्गुल और एक अंगुल के ग्यारहवें दो भाग बढ़ती जाती है। तीसरी नरक के हरेक पाथड़े में छह हाथ अर्थात् डेढ धनुप २२ अङ्गुल और अङ्गुल के नवमें छह भाग बढ़ती जाती है। चौथी नरक के हरेक पाथड़े में ४, धनुप बीस अङ्गुल और एक अङ्गुल के सातवें चार भाग (४/७) बढ़ती जाती है। पांचवीं नरक के हरेक पाथड़े में १२॥ धनुप बढ़ती जाती है। छठी नरक के हरेक पाथड़े में ४१॥ धनुप १६ अंगुल बढ़ती जाती है।

नरक में उत्पन्न होते समय सब जीवों की जघन्य अवगाहना अङ्गुल के असंख्यातवें भाग होती है। यहां सब की उत्कृष्ट अवगाहना बताई गई है।

चौथे पाथड़े की जघन्य स्थिति करोड़ पूर्व की और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें एक भाग की है। पांचवें पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें एक भाग और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें दो भाग ($\frac{2}{10}$) की है। छठे पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें दो भाग ($\frac{2}{10}$) और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें तीन भाग ($\frac{3}{10}$) की है। सातवें पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें तीन भाग ($\frac{3}{10}$) और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें चार भाग ($\frac{4}{10}$) की है। आठवें पाथडे की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें चार भाग ($\frac{4}{10}$) और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें पांच भाग ($\frac{5}{10}$) की है। नववें पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें पांच भाग ($\frac{5}{10}$) और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें छह भाग ($\frac{6}{10}$) की है। दसवें पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर दसवें छह भाग ($\frac{6}{10}$) और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें सात भाग ($\frac{7}{10}$) की है। ग्यारहवें पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें सात भाग ($\frac{7}{10}$) और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें आठ भाग ($\frac{8}{10}$) की है। बारहवें पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें आठ भाग ($\frac{8}{10}$) और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें नव भाग ($\frac{9}{10}$) की है। तेरहवें पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें नव भाग ($\frac{9}{10}$) और उत्कृष्ट एक सागर की है।

दूसरी नरक में ग्यारह पाथड़े हैं। पहले पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर की और उत्कृष्ट एक सागर और एक सागर के

ग्यारहवें दो भाग (२/११) की है। दूसरे पाथड़े की * उत्कृष्ट स्थिति एक सागर और एक सागर के ग्यारहवें चार भाग (४/११) की है। तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर और एक सागर के ग्यारहवें छह भाग (६/११) की है। चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर और एक सागर के ग्यारहवें आठ भाग की है। पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर और एक सागर के ग्यारहवें दस भाग (१०/११) की है। छठे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति दो सागर और एक सागर के ग्यारहवें एक भाग (१/११) की है। सातवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति दो सागर और एक सागर के ग्यारहवें तीन भाग (३/११) की है। आठवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति दो सागर और एक सागर के ग्यारहवें पांच भाग (५/११) की है। नववें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति दो सागर और एक सागर के ग्यारहवें सात भाग (७/११) की है। दसवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति दो सागर और एक सागर के ग्यारहवें नौ भाग (९/११) की है। ग्यारहवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागर की है।

---

* जो पहले पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति है वह आगे के पाथड़े की जघन्य स्थिति होती है। इसलिए यहां आगे के पाथड़ों की जघन्य स्थिति न बतलाते हुए, उत्कृष्ट स्थिति ही बतलाई जाती है।

तीसरी नरक में ९ पाथड़े हैं। पहले पाथड़े की जघन्य स्थिति तीन सागर की है और उत्कृष्ट स्थिति तीन सागर और एक सागर के नववें चार भाग (४/९) की है। दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागर और एक सागर के नववें आठ भाग (८/९) की है। तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति चार सागर और एक सागर के नववें तीन भाग (३/९) की है। चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति चार सागर और एक सागर के नववें सात भाग (७/९) की है। पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति पांच सागर और एक सागर के नववें दो भाग (२/९) की है। छठे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति पांच सागर और एक सागर के नववें छह भाग (६/९) की है। सातवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति छह सागर और एक सागर के नववें एक भाग (१/९) की है। आठवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति छह सागर और एक सागर के नववें पांच भाग (५/९) की है। नववें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति सात सागर की है।

चौथी नरक में सात पाथड़े हैं। पहले पाथड़े की जघन्य स्थिति सात सागर की है। उत्कृष्ट स्थिति सात सागर और एक सागर के सातवें तीन भाग (३/७) की है। दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति सात सागर और एक सागर के सातवें छह भाग (६/७) की है। तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति आठ सागर और एक सागर के सातवें दो भाग (२/७) की है। चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति आठ सागर और एक सागर के सातवें पांच भाग (५/७)

की है। पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति नौ सागर और एक सागर के सातवें एक भाग (३/७) की है। छठे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति नौ सागर और एक सागर के सातवें चार भाग (४/७) की है। सातवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति दस सागर की है।

पांचवीं नरक में पांच पाथड़े हैं। पहले पाथड़े की जघन्य स्थिति दस सागर की है। उत्कृष्ट स्थिति ग्यारह सागर और एक सागर के पांचवें दो भाग (२/५) की है। दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति बारह सागर और एक सागर के पांचवें चार भाग (४/५) की है। तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागर और एक सागर के पांचवें एक भाग (१/५) की है। चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह सागर और एक सागर के पांचवें तीन भाग (३/५) की है। पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति सतरह सागर की है।

छठी नरक में तीन पाथड़े हैं। पहले पाथड़े की जघन्य स्थिति सतरह सागर की है। उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागर और एक सागर के तीसरे दो भाग (२/३) की है। दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति बीस सागर और एक सागर के तीसरे एक भाग (१/३) की है। तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागर की है।

सातवीं नरक में एक ही पाथड़ा है। उसकी जघन्य स्थिति

बाईस सागर की है और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर की है ※।

"नरक का अधिकार सम्पूर्ण"

※ पहली नरक के दूसरे पाथड़े को छोड़ कर बाकी सातवीं नरक तक के सब पाथड़ों में पहले के पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति उसके आगे के पाथड़े की जघन्य स्थिति होती है। जैसे पहली नरक के तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति करोड़ पूर्व की है तो चौथे पाथड़े की जघन्य स्थिति करोड़ पूर्व की होती है। इसी तरह सब जगह समझ लेना चाहिए।

देवता का अधिकार

अहो भगवान् ! देव कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! देव चार प्रकार के हैं— १ भवनपति, २ वाणव्यन्तर, ३ ज्योतिषी और ४ वैमानिक देव।

अहो भगवान् ! भवनपति देव कहाँ रहते हैं ? हे गौतम ! पहली नरक के १३ पाथड़े हैं और १२ आंतरे (अन्तर) हैं। ऊपर के दो आंतरे खाली हैं। बाकी दस आंतरों में दस जाति के भवनपति देव रहते हैं।

अहो भगवान् ! उन भवनपति देवों के क्या नाम हैं ? हे गौतम ! उनके नाम इस प्रकार हैं— १ असुर कुमार, २ नाग कुमार, ३ सुवर्ण (सुपर्ण) कुमार, ४ विद्युत्कुमार, ५ अग्निकुमार, ६ द्वीप कुमार, ७ उदधि कुमार, ८ दिशा कुमार, ९ वायु कुमार, १० स्तनित कुमार।

अहो भगवान् ! उनके कितने इन्द्र हैं और उनके क्या नाम हैं ? हे गौतम ! उनके बीस इन्द्र हैं और उनके नाम इस प्रकार हैं— १ चमरेन्द्रजी (असुरेन्द्र, असुरराज), २ बलीन्द्रजी (वैरोचनेन्द्र, वैरोचनराज), ३ धरणेन्द्रजी, ४ भूतेन्द्रजी

(भूतानन्द जी), ५ वेणुदेव, ६ वेणुदाली (विचित्र पक्ष) ७ हरिकान्त, ८ हरिशिख (सुप्रभकान्त), ६ अग्निशिख (अग्निसिंह), १० अग्निमाणव (तेजप्रभ), ११ पूर्णेन्द्र, १२ विशिष्टेन्द्र (रूपप्रभ), १३ जलकान्त, १४ जलप्रभ, १५ अमितगति १६ अमितवाहन (सिंह विक्रमगति), १७ वेलम्ब, १८ प्रभंजन (रिष्ट), १६ घोष, २० महाघोष (महानन्द्यावर्त) ॐ।

अहो भगवान् ! इन दस भवनपति देवों के क्या चिन्ह हैं ! हे गौतम ! इनके चिन्ह इस प्रकार हैं— १ असुरकुमारों के चूड़ामणि (राखड़ी) का चिन्ह है। २ नागकुमार देवों को नाग (सांप) का चिन्ह है। ३ सुवर्ण (सुपर्ण) कुमार देवों के गरुड़ का चिन्ह है। ४ विद्युत्कुमार देवों के वज्र का चिन्ह है। ५ अग्निकुमार देवों के कलश का चिन्ह है। ६ द्वीप कुमार देवों के सिंह का चिन्ह है। ७ उदधिकुमार देवों के अश्व (घोड़ा) का चिन्ह है। ८ दिशाकुमार देवों के गज (हाथी) का चिन्ह है। ६ पवनकुमार देवों के मगरमच्छ का चिन्ह है। १० स्तनित कुमारदेवों के वर्द्धमान (स्वस्तिक) का चिन्ह है।

अहो भगवान् ! भवनपति देवों के कितने भवन हैं ? हे गौतम ! ७ करोड़ ७२ लाख भवन हैं। ४ करोड़ ६ लाख भवन

ॐ इनमें से विषम संख्या वाले (पहला, तीसरा, पांचवां आदि) दक्षिण दिशा के इन्द्र हैं। और समसंख्या वाले (दूसरा, चौथा, छठा आदि) उत्तर दिशा के इन्द्र हैं।

क्षिण दिशा में हैं और ३ करोड़ ६६ लाख उत्तर दिशा हैं।

अब प्रत्येक-भवनपति देवों के भवनों की संख्या बतलाई जाती है— दक्षिण दिशा में असुरकुमारों के ३४ लाख भवन हैं। नागकुमारों के ४४ लाख भवन हैं। सुवर्णकुमारों के ३८ लाख भवन हैं। विद्युत्कुमार अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार और स्तनित कुमार इन छह के ४०-४० लाख भवन हैं। पवनकुमार के ५० लाख भवन हैं। ये सब मिला कर दक्षिण दिशा में ४ करोड़ छह लाख भवन हुए। उत्तर दिशा में असुरकुमारों के ३० लाख भवन हैं। नागकुमारों के ४० लाख भवन हैं। सुवर्णकुमारों के ३४ लाख भवन हैं। विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार और स्तनितकुमार इन छह के ३६-३६ लाख भवन हैं। पवनकुमारों के ४६ लाख भवन हैं। ये सब मिला कर उत्तर दिशा में ३ करोड़ ६६ लाख भवन हुए। कुल मिला कर ७ करोड़ ७२ लाख भवन हुए।

अहो भगवान्! उन भवनों का आकार कैसा होता है? हे गौतम! वे भवन बाहर से गोल और अन्दर से चौकोण (चतुष्कोण) होते हैं। उनके नीचे का भाग कमल की कर्णिका आकार वाला होता है।

अहो भगवान्! भवनपति देवों के भवन कितने लम्बे चौड़े होते हैं? हे गौतम! जघन्य जम्बूद्वीप प्रमाण होते हैं, मध्यम असंख्यात द्वीप प्रमाण होते हैं और उत्कृष्ट कितनेक संख्याता योजन

के होते हैं, कितनेक असंख्याता योजन के होते हैं। इनका प्रमाण नरकावासों की तरह जानना चाहिए।

अहो भगवान्! संख्याता योजन के भवन कितने हैं? हे गौतम! सब भवनों के पांच विभाग किये जांय तो एक विभाग के भवन संख्याता योजन के हैं और बाकी चार विभाग के भवन असंख्याता योजन के हैं।

अहो भगवान्! इन भवनों में कितने देव रहते हैं? हे गौतम! संख्यात योजन के भवनों में संख्याता देव रहते हैं और असंख्याता योजन के भवनों में असंख्याता देव रहते हैं।

अहो भगवान्! भवनपति देवों का वर्ण कैसा है। हे गौतम! असुरकुमारों का वर्ण काला है। नागकुमार और उदधिकुमारों का वर्ण सफेद (धवल) है। सुवर्ण कुमार और स्तनित कुमार इन दोनों का स्वर्ण (सोना) के समान पीला है। विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार और दिशाकुमार इन चारों का वर्ण लाल है। पवनकुमार का वर्ण नीला है।

अहो भगवान्! भवनपति देवों के वस्त्रों का वर्ण कैसा है? हे गौतम! असुरकुमारों के वस्त्रों का वर्ण लाल है। नागकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, द्वीपकुमार और अग्निकुमार इन पांच के वस्त्रों का वर्ण नीला है। दिशाकुमार, स्तनितकुमार और सुवर्ण-कुमार, इन तीन के वस्त्रों का वर्ण सफेद है। वायुकुमार देवों के वस्त्रों का वर्ण सन्ध्याराग के समान है।

अहो भगवान् ! चमरेन्द्रजी के कितनी परिषद (परखदा) है ? हे गौतम ! तीन परिषद हैं—१. शमिया (शमिता), २. जाया और ३. चण्डा। इसी प्रकार सभी इन्द्रों के तीन तीन प्रकार की परिषद् होती है ।

अहो भगवान् ! भवनपति इन्द्रों के अग्रमहिषी और उनका परिवार आदि कितना है ? हे गौतम ! चमरेन्द्रजी और बलीन्द्रजी के पांच पांच अग्रमहिषियां हैं—१. काली, २. राजी, ३. रजनी, ४. विद्युत, ५. महिता। एक एक अग्रमहिषी के आठ आठ हजार देवियों का परिवार है। यदि एक एक देवी वैक्रिय रूप बनावे तो आठ आठ हजार वैक्रिय-रूप बना सकती है। शेष १८ इन्द्रों के छह-छह अग्रमहिषियां हैं। एक एक अग्रमहिषी के छह छह हजार देवियों का परिवार है। यदि एक एक देवी वैक्रिय रूप बनावे तो छह छह हजार वैक्रिय रूप बना सकती है। इन्द्र जितनी देवियां होती हैं उतने ही रूप बना सकते हैं।

अहो भगवान् ! इन बीस इन्द्रों के कितने प्रकार की अनीका (सेना) है ? हे गौतम ! हरेक इन्द्र के सात सात प्रकार की अनीका है—१. गजानीक (हाथियों की सेना), २. हयानीक (घोड़ों की सेना), ३. रथानीक (रथों की सेना), ४. पदाति अनीक, (पैदल सेना), ५. महिषानीक (भैंसों की सेना), ६. गन्धर्वानीक (गन्धर्व देवों की सेना), ७. नाट्यानीक (नाटक करने वालों की सेना.) इन बीस ही इन्द्रों के तेतीस तेतीस त्रायस्त्रिंशक देव होते हैं। वे देव गुरु और माता पिता के समान पूज्य होते हैं।

अहो भगवान्! चमरेन्द्रजी की चमर चंचा राजधानी कहां प
है? हे गौतम! इस जम्बूद्वीप से दक्षिण दिशा की तरफ असंख्यात
द्वीप समुद्र उल्लंघ कर जाने पर अरुणवर द्वीप आता है। उस
द्वीप की पद्मवर वेदिका से आगे ४२ हजार योजन समुद्र में आ
पर तिगिच्छ नाम का कूट (पर्वत) आता है। तिगिच्छ कूट १७२
योजन ऊंचा है। १०२२ योजन मूल में पोला है। ४२४ योजन
बीच में पोला है। ७२३ योजन ऊपर पोला है। डुगडुगी (बन्दर
नचाने वाले मदारी का बाजा) के आकार है। उस कूट के चारों
तरफ पद्मवरवेदिका और बाग है। उस कूट के मध्यभाग में बहु
समरमणीय भूमि भाग है। वहां एक प्रसाद (महल) है। वह
तेतीस मंजला है। वह महल* स्वच्छ, सुंहाला, मनोहर, घृ
(घिस कर सुन्दर बनाया हुआ), मृष्ट (साफ किया हुआ), रज रहित

---

* इन १६ उपमाओं के लिए शास्त्र का पाठ यह है—

१. अच्छा—स्वच्छ। २. सण्हा—कोमल। ३. लण्हा—मनोहर। ४. घट्टा (घृष्ट)—घिस कर सुहाले बनाये हुए। ५. मट्ठा (मृष्ट) पोंछ कर चिकने बनाये हुए। ६. णीरया—रज रहित। ७. निम्मला—निर्मल। ८. निप्पंका—निष्पंक—कीचड़ रहित। ९. निक्कंकड छाया—निर्दोष छाया युक्त। १०. सप्पभा—प्रभा-प्रकाश सहित। ११. समिरीया—किरण युक्त, कान्ती युक्त। १२. सउज्जोया—उद्योतकारी। १३. पासाईया—चित्त को प्रसन्न करने वाले। १४. दरिसणिज्जा—दर्शनीय। १५. अभिरूवा—अभिरूप, अत्यन्त रूपवान। १६. पडिरूवा—प्रतिरूप अर्थात् जिसमें रूप का प्रतिबिम्ब पड़ता है, ऐसे हैं।

निर्मल, पंक (कीचड़) रहित, चिक्कण छाया सहित, निरावरण कान्ति वाला, प्रकाश-युक्त, सश्रीक (शोभा सहित), लक्ष्मी युक्त, उद्योतकारी, चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय (देखने योग्य), अभिरूप (अत्यन्त रूपवान्), प्रतिरूप (रूप के प्रतिबिम्ब सहित) । उस महल के ३३ मंजिलों में से ऊपर के १६ मंजिलों में और नीचे के १६ मंजिलों में एक एक भद्रासन है। बीच के खण्ड में परिवार सहित सिंहासन है। जब भवनपति देव मनुष्य लोक में आते हैं तो यहां पर उत्तरवैक्रिय रूप बना कर आते हैं। उस पर्वत से ६५५ करोड़ ३५ लाख ५० हजार योजन तिर्च्छा जाकर वहां से चालीस हजार योजन नीचे उतरने पर चमरेन्द्रजी की चमरचंचा राजधानी है। वह राजधानी एक लाख योजन की ... है। उसकी परिधि तीन लाख १६ हजार २२७ योजन ...स १२८ धनुष १३॥ अंगुल झाझेरी (कुछ अधिक) है। उसके चारों तरफ कोट है। वह कोट १५० योजन का ऊंचा है। ५० ... में पोला है, ३७॥ योजन बीच में पोला है और २५ योजन ऊपर पोला है। वह कोट रत्नमय (रत्नों का बना हुआ) है। उसके ऊपर पांच प्रकार के मणिरत्नों में कंगुरे हैं। वे ...रे दो कोस के लम्बे, एक कोस के चौड़े और देश उणा दो ... के ऊंचे हैं। उस कोट के २००० दरवाजे हैं। एक एक दरवाजा २५०-२५० योजन का ऊंचा है, १२५ योजन का चौड़ा है। राजधानी के मध्यभाग में सोलह हजार योजन का एक ... है। उसके ऊपर ३४१ महलों का झूमका है। बीच में

इन्द्र का महल है। वह महल २५० योजन का ऊंचा है, १२५ योजन का चौड़ा है। इसके चारों तरफ चार महल हैं। ये महल १२५ योजन के ऊंचे और ६२॥ योजन के चौड़े हैं। उनके चारों तरफ १६ महल हैं। वे लम्बाई चौड़ाई में उनसे आधे परिमाण वाले हैं। उनके चारों तरफ ६४ महल उनसे आधे परिमाण वाले हैं। उनके चारों तरफ २५६ महल उनसे आधे परिमाण वाले हैं। इस प्रकार ३४१ महलों का झूमका है। बीच में इन्द्र का महल है। आस-पास दूसरे देवों के महल हैं। यहां बाग बगीचा तालाब, कुआ सरोवर, पुष्करणी सिद्धायतन ध्वजा पताका तोरण स्तम्भ आदि हैं। यहां भवनपति देव पांच इन्द्रियों के सुख एवं पूर्व पुण्य को भोगते हैं।

चमरचञ्चा राजधानी से नैऋत्य कोण में ६५५ करोड़ ३५ लाख ५० हजार योजन आगे जाने पर चमरेन्द्रजी का आवास आता है। यह आवास * चौरासी हजार योजन का लम्बा चौड़ा है। बाकी सारा वर्णन चमरचंचा राजधानी सरीखा है किन्तु

---

* भवनपति देवों के भवन और आवासों में यह फरक होता है। भवन तो बाहर से गोल और अन्दर से चतुष्कोण (चौकोण) होते हैं। उनके नीचे का भाग कमल की कर्णिका के आकार वाला होता है।

शरीर प्रमाण बड़े, मणि तथा रत्नों के दीपकों से चारों दिशाओं प्रकाशित करने वाले मंडप आवास कहलाते हैं।

भवनपति देव भवनों में रहते हैं। उनके क्रीड़ा करने के स्थानों आवास कहते हैं। उनमें वे रहते हैं, उठते बैठते हैं, क्रीड़ा करते हैं।

तना फर्क है कि यहां पांच सभा नहीं हैं। नैऋत्य कोण की तरह चारों कोणों में चार आवास हैं। वे चारों आवास चम्पक-वन, अशोक वन, सप्त वन और आम्र वन (चूयकवन) के अन्दर हैं।

अहो भगवान्! वे आवास क्यों कहलाते हैं? हे गौतम! जैसे कोई मनुष्य बगीचे में जाता है वहां बैठता है, उठता है, क्रीड़ा कल्लोल करता है किन्तु वहां निवास नहीं करता है, इसी तरह चमरेन्द्रजी आदि देव वहां जाते हैं, बैठते हैं, उठते हैं, क्रीड़ा कल्लोल आदि करते हैं किन्तु वहां निवास नहीं करते हैं वे रहते तो अपनी राजधानी में हैं।

अब राजधानी का विशेष वर्णन किया जाता है— राजधानी के बीच में १६ हजार योजन का एक चबूतरा है, उसके ऊपर ३४१ महलों का झूमका है। वहां पांच सभा हैं— १ सुधर्मा सभा, २ उपपात सभा, ३ अलंकार सभा, ४ अभिषेक सभा, ५ व्यवसाय सभा। सुधर्मा सभा के तीन दरवाजे हैं— पूर्व में, पश्चिम में और उत्तर में। उनके आगे एक मुख्य मण्डप है। सुधर्मा सभा में चारों दिशाओं में छह छह हजार छोटे चबूतरे हैं। वहां माणवक स्तम्भ है, वह ३६ योजन ऊंचा है। सुधर्मा सभा में [illegible] है। माणवक स्तम्भ से पश्चिम दिशा में एक बड़ी देव शय्या है। उस देव शय्या से ईशान कोण में महेन्द्र ध्वजा है। महेन्द्र ध्वजा से पश्चिम दिशा में चोपाल आयुधशाला है।

[illegible]

उपपात सभा का वर्णन— उपपात सभा में उत्पन्न होने की शय्या है। अलंकार सभा में राजमहोत्सव की सामग्री है। अभिषेक सभा में इन्द्र का अभिषेक (राजमहोत्सव), किया जाता है। व्यवसाय सभा में पुस्तकरत्न है। ईशान कोण में सिंहासन है जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

चमरेन्द्रजी के ६४ हजार सामानिक देव हैं, दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक देव हैं। उनकी तीन परिषद् (परखदा) हैं— आभ्यन्तर परिषद, मध्यम परिषद, और बाह्य परिषद। आभ्यन्तर परिषद् में खास सलाह विचार किया जाता है। इसके देव आदर से बुलाने पर आते हैं और भेजने पर वापिस जाते हैं। मध्यम (बीच की) परिषद् में सामान्य सलाह विचार किया जाता है। ये देव बुलाने पर आते हैं किन्तु बिना भेजे ही वापिस चले जाते हैं। बाह्य (बाहर की) परिषद् के देवों को हुक्म (आज्ञा) दिया जाता है कि अमुक कार्य करो। ये देव बिना बुलाये ही आते हैं और बिना भेजे ही जाते हैं। अर्थात् इनको हाजिर होना ही पड़ता है। आभ्यन्तर (अन्दर की) परिषद् में २४ हजार देव हैं। मध्यम परिषद् में २८ हजार देव हैं। बाह्य परिषद् में ३२ हजार देव हैं। देवियों की भी तीन प्रकार की परिषद् है। आभ्यन्तर परिषद् में ३५० देवियां हैं। मध्यम परिषद् में ३०० देवियां हैं। बाह्य परिषद् में २५० देवियां हैं।

आभ्यन्तर परिषद् के देवों की स्थिति ढाई पल्योपम की है। मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति दो पल्योपम की है और

परिषद् के देवों की स्थिति १॥ पल्योपम की है। आभ्यन्तर परिषद् की देवियों की स्थिति १॥ पल्योपम की है। मध्यम परिषद् की देवियों की स्थिति एक पल्योपम की है और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति आधा पल्योपम की है। चार चार लोकपाल हैं। ३३ त्रायस्त्रिंशक देव हैं। सात अनीका (सेना) है। एक एक अनीका में ८१ लाख २८ हजार देव हैं।

बलीन्द्र जी के ६० हजार सामानिक देव हैं। दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देव हैं। तीन प्रकार की परिषद् हैं—शमिया (शमिता), चण्डा और जाया। एक एक परिषद् में आभ्यन्तर परिषद् के २० हजार देव हैं। मध्यम परिषद् के २४ हजार देव हैं। और बाह्य परिषद् में २८ हजार देव हैं। क्रमशः इन देवों की स्थिति ३। पल्योपम, ३ पल्योपम और २॥ पल्योपम की है। आभ्यन्तर परिषद् में ४५० देवियां हैं, इनकी स्थिति २॥ पल्योपम की है। मध्यम परिषद् में ४०० देवियां हैं, इनकी स्थिति दो पल्योपम की है। बाह्य परिषद् में ३५० देवियां हैं, इनकी स्थिति १॥ पल्योपम की है। चार लोकपाल हैं। ३३ त्रायस्त्रिंशक देव हैं। सात अनीका हैं। एक एक अनीका में ७६ लाख २० हजार देव हैं। बलीन्द्र जी के पांच अग्रमहिषियां हैं। एक एक अग्रमहिषी के आठ आठ हजार देवियों का परिवार है। एक एक देवी आठ आठ हजार रूप वैक्रिय कर सकती हैं।

शेष १८ इन्द्रों के छह छह हजार सामानिक देव हैं। चौबीस चौबीस हजार आत्मरक्षक देव हैं। तीन तीन प्रकार की परिषद् हैं।

दक्षिण दिशा के नौ इन्द्रों के आभ्यन्तर परिषद् में साठ साठ हजार देव हैं। मध्यम परिषद् में ७०-७० हजार देव हैं। और बाह्य परिषद् में ८०-८० हजार देव आभ्यन्तर परिषद् में १७५-१७५ देवियां हैं। मध्यम परिषद् में १५०-१५० देवियां हैं। और बाह्य परिषद् में १२५-१२५ देवियां हैं। आभ्यन्तर परिषद् के देवों की स्थिति आधा पल्योपम आमेरी है। मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति आधा पल्योपम की है। बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति आधा पल्योपम माठेरी (कुछ कम) है। आभ्यन्तर परिषद् की देवियों की स्थिति आधा पल्योपम माठेरी (कुछ कम) है। मध्यम परिषद् की देवियों की स्थिति पाव पल्योपम आमेरी है और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति पाव पल्योपम की है। एक एक इन्द्र के छह छह अग्रमहिषियां हैं। एक एक अग्रमहिषी के छह छह हजार देवियों का परिवार है। एक एक देवी छह छह हजार रूप वैक्रिय कर सकती है। चार लोकपाल हैं। ३३ त्रायस्त्रिंशक देव हैं। सात अनीका हैं। एक एक अनीका में २४ लाख ४६ हजार देव हैं।

उत्तर दिशा के नौ इन्द्रों के छह छह हजार सामानिक देव हैं। २४-२४ हजार आत्मरक्षक देव हैं। तीन तीन प्रकार की परिषद् हैं। आभ्यान्तर परिषद् में ५०-५० हजार देव हैं। पौन पल्योपम की स्थिति है। मध्यम परिषद् में ६०-६० हजार देव हैं। पौन पल्योपम माठेरी (कुछ कम) स्थिति है। बाह्य परिषद् में ७०-७० हजार देव हैं। आधा पल्योपम आमेरी स्थिति है। आभ्यन्तर

परिषद् में २२५-२२५ देवियां हैं। आधा पल्योपम भाभेरी स्थिति है। मध्यम परिषद् में २००-२०० देवियां हैं। आधा पल्योपम की स्थिति है। बाह्य परिषद् में १७५-१७५ देवियां हैं। आधा पल्योपम माठेरी (कुछ कम) स्थिति है। चार लोकपाल देव हैं। ३३ त्रायस्त्रिंशक देव हैं। सात अनीका हैं। एक एक अनीका में ३५ लाख ५६ हजार देव हैं।

॥ भवनपति देवों का अधिकार समाप्त ॥

अथ वाणव्यन्तर देवों का अधिकार चलता है सो कहते है—

अहो भगवान्! वाणव्यन्तर देव कहां रहते हैं? हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के पहले रत्नकाण्ड में १००० योजन की ठीकरी मोटी है। उसमें से १०० योजन ऊपर छोड़ कर और १०० योजन नीचे छोड़ कर बीच में ८०० योजन की पोलार है। उसमें १. पिशाच, २. भूत, ३. यक्ष, ४. राक्षस, ५. किन्नर, ६. किम्पुरुष, ७. महोरग, ८. गन्धर्व, इन आठ जाति के वाणव्यन्तर देवों के असंख्याता नगर हैं। ऊपर के १०० योजन में से दस योजन ऊपर छोड़ कर और दस योजन नीचे छोड़ कर बीच में ८० योजन की पोलार है। उसमें एक आणपन्ने (आणपन्निक) २. पाणपन्न (पाणपन्निक) ३. ईसिवाई (ऋषिवादिक), भूयवाई, (भूतवादी), ५. कंदिए (कंदित), ६. महाकंदिए (महाकंदित), ७. कोहंड (कूष्माण्ड), ८. पयंगदेव (पतंगदेव), इन आठ जाति के वाणव्यन्तर देवों के असंख्याता नगर हैं। वे सब रत्नमय हैं। वे जघन्य तो भरत क्षेत्र प्रमाण हैं। मध्यम महाविदेह क्षेत्र प्रमाण हैं और

उत्कृष्ट जम्बूद्वीप प्रमाण हैं। ७२ योजन का ऊँचा कोट है। ६२॥ योजन के ऊँचे महल हैं। ३४१ महलों का भूमका है। बीच में इन्द्र का महल है। चारों तरफ दूसरे देवों के महल हैं। ये सब ध्वजा पताका तोरण आदि में युक्त हैं। इनकी (ध्वजा) पर चिन्ह होते हैं। वे इस प्रकार हैं— पिशाच देवों की ध्वजा में कदम्ब वृक्ष का चिन्ह है। भूत देवों की ध्वजा में सुलस वृक्ष अथवा शालि का चिन्ह है। यक्ष देवों की ध्वजा में वट वृक्ष का चिन्ह है। राक्षस जाति के देवों की ध्वजा में स्कन्दक वृक्ष तथा पांखली वृक्ष का चिन्ह होता है। किन्नर जाति के देवों की ध्वजा में अशोक वृक्ष का चिन्ह होता है। किम्पुरुष जाति के देवों की ध्वजा में चम्पक वृक्ष चिन्ह होता है। महोरग जाति के देवों की ध्वजा में नाग वृक्ष का चिन्ह होता है। गन्धर्व जाति के देवों की ध्वजा में टिम्बरु वृक्ष का चिन्ह होता है। इसी प्रकार आणपन्ने, पाणपन्ने आदि आठ जाति के देवों की ध्वजा में भी अनुक्रम से ये ही चिह्न होते हैं।

अहो भगवान्! इन वाणव्यन्तर देवों का वर्ण कैसा होता है? हे गौतम! पहला (पिशाच), तीसरा (यक्ष), सातवां (महोरग) और आठवां (गन्धर्व), इन चार का वर्ण श्याम है। पांचवें (किन्नर) का वर्ण नीला है। चौथा (राक्षस) और छठा (किम्पुरुष) का वर्ण सफेद है। दूसरे (भूत) का वर्ण काला है।

अहो भगवान्! इनके वस्त्र किस वर्ण के होते हैं?

हे गौतम ! पहला (पिशाच), दूसरा (भूत), चौथा (राक्षस) इन तीन के वस्त्रों का वर्ण नीला होता है। तीसरा (यक्ष), पांचवां (किन्नर) और छठा (किम्पुरुष), इन तीन के वस्त्रों का वर्ण पीला होता है। सातवां (महोरग), आठवां (गन्धर्व), इन दो के वस्त्रों का वर्ण श्याम होता है। इसी तरह आणपन्ने, पाणपन्ने आदि आठ जाति के देवों के वस्त्र का वर्ण अनुक्रम से जान लेना चाहिए।

अहो भगवान् ! इनको वाणव्यन्तर (व्यन्तर अथवा वानमन्तर) क्यों कहा जाता है ? हे गौतम ! विविध प्रकार के भवन, नगर और आवास उनका आश्रय स्थान हैं, इसलिए उनको व्यन्तर कहते हैं अथवा वे वनों के अन्तर में रहते हैं, इसलिए उनको वाणव्यन्तर कहते हैं।

अहो भगवान् ! इनके कितने इन्द्र हैं ? हे गौतम ! इनके १६ इन्द्र हैं— पिशाचों के काल और महाकाल। भूतों के सुरूप और प्रतिरूप। यक्षों के पूर्णभद्र और मणिभद्र। राक्षसों के भीम और महाभीम। किन्नरों के किन्नर और किम्पुरुष। किम्पुरुषों के सत्पुरुष और महापुरुष। महोरगों के अतिकाय और महाकाय। गन्धर्वों के गीतरति और गीतयश। काल दक्षिण दिशा का इन्द्र है और महाकाल उत्तर दिशा का इन्द्र है। इसी तरह सुरूप और प्रतिरूप आदि को भी जानना चाहिए। एक एक इन्द्र के ४-४ हजार सामानिक देव हैं। १६-१६ हजार आत्मरक्षक देव हैं। तीन प्रकार की परिषद् हैं। ८-८ हजार देव आभ्यन्तर परिषद् में

हैं। १०-१० हजार देव मध्यम परिषद् में हैं। १२-१२ हजार देव बाह्य परिषद् में हैं। जिस प्रकार भवनपति देवों की परिषद् का कार्य बतलाया है, उसी प्रकार इनकी परिषद् का भी कार्य है। एक एक इन्द्र के चार चार अग्रमहिषियां हैं। एक एक अग्रमहिषी के एक एक हजार देवियों का परिवार है। एक एक देवी यदि वैक्रिय बनावे तो एक एक हजार रूप वैक्रिय कर सकती है।

अहो भगवान्! आणपन्ने पाणपन्ने आदि देव कहां रहते हैं? हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के १०० योजन में से दस योजन ऊपर छोड़ कर और दस योजन नीचे छोड़ कर बीच में ८० योजन की पोलार है, उसमें आणपन्ने पाणपन्ने आदि आठ जाति के देव रहते हैं।

अहो भगवान्! आणपन्ने पाणपन्ने आदि के कितने इन्द्र हैं? हे गौतम! १६ इन्द्र हैं। आणपन्ने (आणपन्निक) के सन्निहित और सामान्य। पाणपन्ने (पाणपन्निक) के धाता और विधाता। इसिवाई (ऋषिवादी) के ऋषि और ऋषिपाल। भूयवाई (भूतवादी) के ईश्वर और महेश्वर। कंदिय (कंदित) के सुवत्स और विशाल। महाकंदिय (महाकंदित) के हास और हासरति। कोहंड (कुष्माण्ड) के श्वेत और महाश्वेत। पयंगदेव (पतंगदेव) के पतंग और पतंगपति। ये १६ इन्द्र हैं। इनका वर्णन पिशाच आदि के समान समझना चाहिए।

॥ वाणव्यन्तर देवों का अधिकार समाप्त ॥

अब तिर्यग्लोक के २२ बोलों का अधिकार बतलाते हुए कहते हैं—

अहो भगवान्! इसका नाम जम्बूद्वीप क्यों है? हे गौतम! इसमें जम्बू सुदर्शन नाम का वृक्ष है, इसलिए इसको जम्बूद्वीप कहते हैं। उस जम्बू वृक्ष का मालिक वाणव्यन्तर जाति का अनाढ्य देव है। उसकी एक पल्योपम की आयुष्य है। यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन का लम्बा चौड़ा है। यह चन्द्रमा के आकार, सोने की थाली के आकार, रथ के पहिये के आकार, तेल के पुड़लें (मालपूए) के आकार, कमल की कर्णिका के आकार गोल है। यह तिर्च्छालोक के असंख्यात द्वीप और समुद्रों के बीच में स्थित है और सब से छोटा है। इसके मध्य में मेरु पर्वत है। जम्बूद्वीप के चारों तरफ जगती का कोट है। वह आठ योजन का ऊंचा है। मूल में बारह योजन का चौड़ा है, बीच में आठ योजन का और ऊपर चार योजन का चौड़ा है। गाय की पूंछ के आकार है। उसकी वज्ररत्न की नींव है, मणिरत्न की भींत है, वैडूर्यरत्न के स्तम्भ हैं, रोहिताक्षरत्न के कीलें हैं, सोना चांदी के पाटिया हैं। उस जगती के कोट के मध्य में पद्मवर वेदिका है। वह आधे योजन की ऊंची है। पांच सौ धनुष की चौड़ी है। पद्मवर वेदिका के ऊपर, हाथी, घोड़ा, सिंह, चीता, मगरमच्छ, गरुड़, चन्द्रमा, सूर्य, स्त्री पुरुष का जोड़ा, विद्याधर विद्याधरी का जोड़ा, पशु, पक्षी, देव, देवी, वृक्ष, लता आदि अनेक प्रकार के रूप बने हुए हैं। मोतियों के झूमके लटकते हैं। चन्दवे बन्धे हुए हैं, चन्दरमाला लटक रही है। पांच प्रकार की वायु चलती है जिससे ये मोतियों के झूमके आपस में टकराते हैं। उदार

हैं। १०-१० हजार देव मध्यम परिषद् में हैं। १२-१२ हजार देव बाह्य परिषद् में हैं। जिस प्रकार भवनपति देवों की परिषद् का कार्य बतलाया है, उसी प्रकार इनकी परिषद् का भी कार्य है। एक एक इन्द्र के चार चार अग्रमहिषियां हैं। एक एक अग्रमहिषी के एक एक हजार देवियों का परिवार है। एक एक देवी यदि वैक्रिय बनावे तो एक एक हजार रूप वैक्रिय कर सकती हैं।

अहो भगवान्! आणपन्ने पाणपन्ने आदि देव कहां रहते हैं? हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के १०० योजन में से दस योजन ऊपर छोड़ कर और दस योजन नीचे छोड़ कर बीच में ८० योजन की पोलार है, उसमें आणपन्ने पाणपन्ने आदि आठ जाति के देव रहते हैं।

अहो भगवान्! आणपन्ने पाणपन्ने आदि के कितने इन्द्र हैं? हे गौतम! १६ इन्द्र हैं। आणपन्ने (आणपन्निक) के सन्निहित और सामान्य। पाणपन्ने (पाणपन्निक) के धाता और विधाता। इसिवाई (ऋषिवादी) के ऋषि और ऋषिपाल। भूयवाई (भूतवादी) के ईश्वर और महेश्वर। कंदिय (कंदित) के सुवत्स और विशाल। महाकंदिय (महाकंदित) के हास्य और हास्यरति। कोहंड (कूष्माण्ड) के श्वेत और महाश्वेत। पतंगदेव (पतंगदेव) के पतंग और पतंगपति। ये १६ इन्द्र हैं। बाकी सब वर्णन पिशाच आदि के समान समझना चाहिए।

॥ वाणव्यन्तर देवों का अधिकार समाप्त ॥

अब तिर्च्छालोक के छह बोलों का अधिकार चलता करते हैं—

अहो भगवान्! इसका नाम जम्बूद्वीप क्यों है? हे गौतम! इसमें जम्बू सुदर्शन नाम का वृक्ष है, इसलिए इसको जम्बूद्वीप कहते हैं। उस जम्बू वृक्ष का मालिक वाणव्यन्तर जाति का अनाढ्य देव है। उसकी एक पल्योपम की आयुष्य है। यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन का लम्बा चौड़ा है। यह चन्द्रमा के आकार, सोने की थाली के आकार, रथ के पहिये के आकार, तेल के पुवले (मालपूए) के आकार, कमल की कर्णिका के आकार गोल है। यह तिर्च्छालोक के असंख्यात द्वीप और समुद्रों के बीच में स्थित है और सब से छोटा है। इसके मध्य में मेरु पर्वत है। जम्बूद्वीप के चारों तरफ जगती का कोट है। वह आठ योजन का ऊंचा है। मूल में बारह योजन का चौड़ा है, बीच में आठ योजन का और ऊपर चार योजन का चौड़ा है। गाय की पूंछ के आकार है। उसकी वज्ररत्न की नींव है, मणिरत्न की भींत है, वैडूर्यरत्न के स्तम्भ हैं, रोहिताक्षरत्न के कीले हैं, सोना चांदी के पाटिया हैं। उस जगती के कोट के मध्य में पद्मवर वेदिका है। यह आधे योजन की ऊंची है। पांच सौ धनुष की चौड़ी है। पद्मवर वेदिका के ऊपर, हाथी, घोड़ा, सिंह, चीता, मगरमच्छ, गरुड़, चन्द्रमा, सूर्य, स्त्री पुरुष का जोड़ा, विद्याधर विद्याधरी का जोड़ा, पशु, पक्षी, देव, देवी, वृक्ष, लता आदि अनेक प्रकार के रूप बने हुए हैं। मोतियों के झूमके लटकते हैं। चन्दवे बन्धे हुए हैं। वन्दनमाला लटक रही है। पांच प्रकार की वायु चलती है जिससे ये मोतियों के झूमके आपस में टकराते हैं। उनसे

में टकराने से छह राग छत्तीस रागिणी निकलती हैं। बत्तीस प्रकार के नाटकों के झणकार हो रहे हैं। वहां अनेक देवी देव आते हैं, क्रीड़ा करते हैं। मनगमते वे शब्द उनके कानों को बड़े सुहावने लगते हैं। पद्मवर वेदिका के आस-पास एक बाग अन्दर है और एक बाग बाहर है। एक बाग देश ऊणा दो योजन का चौड़ा है और जगती के बराबर लम्बा है। उस बाग में पुष्करणी बावड़ी है। वह निर्मल जल से भरी हुई है। उन बावड़ियों का नीचे का तला वज्ररत्नमय है। ऊपर सोने चांदी की बालू रेत बिछी हुई है। वज्ररत्न के पगतिये हैं। उनकी सन्धि रोहिताक्ष रत्न से जड़ी हुई है। वे पगतिये अर्द्ध चन्द्रमा के आकार हैं। वहां बहुत से देवी देव आते हैं। स्नान मज्जन आदि करते हैं। वे बावड़ियां अति शोभायमान हैं। इन बावड़ियों के चारों दिशा में वनखण्ड है। वह अति शोभायमान है। बावड़ियों के चारों तरफ वेदिका है। जगती के बाहर के भाग में काला नीला लाल पीला और सफेद इन पांच वर्णों के तृण (घास) हैं। तृण मणि-रत्नों के हैं। उनका शब्द, रूप, गन्ध और स्पर्श अति मनोज्ञ है। उन तृणों के चारों तरफ चारों दिशा में वायु चलती है। जिससे वे तृण आपस में टकराते हैं तब उनमें से छह राग छत्तीस रागणी पैदा होती हैं।

अहो भगवान्! ये तृण जो काले हैं उनका वर्ण कै[illegible]
हे गौतम! जैसे पानी से भरे हुए काले बादल, जैसे आंख की काली टीकी, जैसे भैंस का काला सींग, काली कोयल, काली कसौंर,

काला बन्धुजीव, काला अशोक, इनसे भी अधिक काले हैं।

अहो भगवान्! वे तृण जो नीले हैं उनका वर्ण कैसा है? हे गौतम! जैसे तोते की नीली पांख, नीली मणि, नीला कनेर, नीला बन्धुजीव, नीला अशोक, बलदेव के नीले कपड़े, इनसे भी अधिक नीले हैं।

अहो भगवान्! वे तृण जो लाल हैं उनका वर्ण कैसा है? हे गौतम! जैसे उगता हुआ सूर्य, लाल हिंगलू, लाल गुलाल, लाल अशोक, लाल कनेर, लाल बन्धुजीव, उनसे भी अधिक लाल होते हैं।

अहो भगवान्! वे तृण जो पीले हैं उनका वर्ण कैसा है? हे गौतम! जैसे पीली हल्दी, वासुदेव के पीले कपड़े, सण के फूल, पीला अशोक, पीला बन्धुजीव, पीली कनेर, इनसे भी अधिक पीले होते हैं।

अहो भगवान्! वे तृण जो सफेद हैं उनका वर्ण कैसा है? हे गौतम! जैसे चांदी का पतड़ा, पानी के फेन, गाय का दूध, शरद ऋतु के बादल, सफेद अशोक, सफेद बन्धुजीव, सफेद कनेर, इनसे भी अधिक सफेद होते हैं।

अहो भगवान्! उन तृणों में से कैसा शब्द निकलता है? जैसे कोई चतुर कारीगर हेमवन्त पर्वत से काष्ठ लाकर उत्तम रथ बनावे और उसमें जाली घूघरे आदि लगावे। उसमें आयुध (शस्त्रास्त्र) भरे। फिर उसमें समान खुर वाले, समान सींग वाले, घूघरमाल और झूल आदि से शोभित बैलों को जोड़ कर

राजा के आंगण में धीरे धीरे चलावे तब उसमें से मधुर झणकार शब्द निकले। क्या वैसा मधुर शब्द उन तृणों में से निकलता है? हे गौतम! नो इणट्ठे समट्ठे (यह बात नहीं है), इससे भी अधिक मधुर शब्द निकलता है। जैसे वाणव्यन्तर जाति की देवियां, किन्नरियां पर्वत की गुफा में बैठ कर हर्ष और उत्साह सहित, आठ गुण सहित एवं छह दोष रहित राग प्रलापन करे, ऐसा शब्द उन तृणों से निकलता है।

अहो भगवान्! वे वन कैसे हैं? हे गौतम! वे वन अत्यन्त सुन्दर हैं। उनमें बहुत से उत्पात पर्वत हैं। बहुत सी पुष्करणी और बावड़ियां हैं। बहुत से सर हैं, सर पंक्तियां हैं, बिल हैं, बिल पंक्तियां हैं। वहाँ झूले लटक रहे हैं वहाँ आकर देवी देव झूलते हैं, क्रीड़ा, कल्लोल करते हैं ❀। वहां देव पूर्व पुण्य भोगते हैं।

अब जगती के कोट का विशेष वर्णन किया जाता है— जगती के कोट के बाहर की तरफ झरोखे हैं। वे चारों तरफ ५०० धनुष के चौड़े हैं। आधे योजन के ऊंचे और आधे योजन के लम्बे हैं। वहाँ मंगल कलश, तोरण, विजय प्रासाद, वेदिका, सिंहासन, जाली झरोखा, ये सब मणिरत्नों में हैं और [illegible] सहित हैं।

❀ इसका ज्यादा विस्तार जीवाभिगम सूत्र से जानना चाहिए।

जम्बूद्वीप के चार दरवाजे हैं— १ विजय, २ वैजयन्त, ३ जयन्त, ४ अपराजित। ये दरवाजे आठ योजन के ऊँचे और चार योजन के चौड़े हैं। दो कोस की भोगल (आगल-अर्गला) है। एक कोस की बारी है। बाकी सारा अधिकार पद्मावर वेदिका के समान है। दरवाजे के दोनों तरफ दो चबूतरे हैं। उनके ऊपर भींत में गजदन्ताकार (हाथी के दान्त के आकार) दो अंकुश (कील) निकले हुए हैं। चबूतरे के पास दो चबूतरे और हैं। उनके ऊपर दो पुतलियां हैं एक दाहिनी तरफ और एक बांई तरफ है। उनका एक हाथ कमर पर दिया हुआ है और एक हाथ से अशोक वृक्ष की शाखा पकड़ी हुई है। ये पुतलियां देवी के समान सुन्दर रूपवाली हैं। उपरोक्त चबूतरों के पास दो चबूतरे और हैं उनके ऊपर झरोखे (जाल-कटड़िया) हैं। ये सब रत्नमय हैं। इस प्रकार बहुत से चबूतरे हैं*। विजय द्वार के दोनों तरफ दो चबूतरे हैं, उन पर दो छोटे चबूतरे हैं। वे चार योजन के लम्बे चौड़े और दो योजन के मोटे (जाड़े) हैं। सब रत्नमय हैं। स्वच्छ यावत् प्रतिरूप १६ उपमा सहित हैं। उन दो छोटे चबूतरों पर एक एक महल है। महल चार योजन के ऊँचे हैं और दो योजन के लम्बे चौड़े रत्नों की रचना से आश्चर्यकारी हैं। ध्वजा पताका इत्यादि युक्त हैं। उनके बीच में एक एक मणिपीठिका चबूतरा है।

---

* इनका ज्यादा विस्तार जीवाभिगम सूत्र से जानना चाहिए।

वह ८८ योजन का लम्बा चौड़ा है। आधे योजन का मोटा (जाड़ा) है, उसके ऊपर विजय देवता का सिंहासन है। वह मणिरत्नों का बना हुआ है और अनेक चित्रों से चित्रित है। यह सिंहासन एक बारीक कपड़े से ढका हुआ है। उसका रुवी बूर नामक वनस्पति और मक्खन तथा आक की रूई से भी अनन्तगुण कोमल (सुंहाला) है। यह अत्यन्त सुगन्धित है। उसके ऊपर चन्दवा बंधा हुआ है। बीच में एक अंकुश (कील) है। उसमें मोतियों का झूमका लटकता है। वायु के चलने से वे मोती परस्पर टकराते हैं तब उनमें से छह राग छत्तीस रागणी निकलती हैं। उसका अधिपति (मालिक–स्वामी) विजय देवता है। उसके चार हजार सामानिक देव हैं। १६ हजार आत्मरक्षक देव हैं। तीन प्रकार की परिषद् है। आभ्यन्तर परिषद् में आठ हजार देवता हैं। मध्यम परिषद् में दस हजार और बाह्य परिषद् में बारह हजार देवता हैं। ये सब वाणव्यन्तर जाति के देवता हैं। विजय देव के चार अग्रमहिषियां हैं। एक पल्योपम का आयुष्य है।

अहो भगवान्! विजय देव की राजधानी कहां पर है? हे गौतम! इस जम्बूद्वीप से पूर्व दिशा में असंख्याता द्वीप, समुद्रों को उल्लंघ कर आगे जाने पर दूसरा जम्बूद्वीप आता है। उस जम्बूद्वीप की पद्मवर वेदिका से बारह हजार योजन आगे जाने पर वहां विजय देव की राजधानी आती है। वह राजधानी [illegible] बारह हजार योजन की लम्बी चौड़ी है। उसका कोट ३७॥ [illegible] का ऊंचा है। उसके पांच सौ दरवाजा हैं। एक एक दिशा में १२५-१२५ दरवाजा हैं। वे दरवाजे ६२॥ योजन के ऊंचे हैं,

३१½ योजन के चौड़े हैं। राजधानी के बीच में एक चबूतरा है। इसके चारों तरफ पद्मवर वेदिका और वनखण्ड हैं। उस चबूतरे के मध्य भाग में ३४१ महलों का झूमका है। एक महल बीच में है। वह ६२॥ योजन का ऊंचा है। सवा इकतीस योजन का चौड़ा है। यह महल विजय देवता का है। और दूसरे महल दूसरे देवों के हैं। यहाँ पांच सभाएँ हैं। विजय देव की राजधानी की गती (कोट) से पद्मवर वेदिका से पांच सौ योजन आगे जाने पर चार बाग आते हैं। बाग पांच सौ योजन के लम्बे चौड़े हैं। वे अत्यन्त शोभा वाले हैं। महाऋद्धि सम्पन्न देवता उसका मालिक है। वह वाणव्यन्तर जाति का देव है। एक पल्योपम की उसकी स्थिति है। विजय देव के समान इसका भी वर्णन जान लेना चाहिए*। यहां सभा नहीं है। यह क्रीड़ा का स्थान है।

अहो भगवान्! क्या यह जीव विजय देव हुआ? हाँ, गौतम! अनन्ती बार हुआ है। अहो भगवान्! फिर कोई विजय देव होंगे? हाँ गौतम! होवेंगे।×

अब लोक का परिमाण बतलाया जाता है—+ जैसे असत् कल्पना से कल्पना कीजिये—इस जम्बूद्वीप के चारों दरवाजों पर चार देवियां हाथ में बलिपिण्ड लेकर खड़ी हैं। उसी समय छह

* विशेष विस्तार सहित वर्णन भी जीवाभिगम सूत्र से जानना चाहिए।

× विशेष विस्तार पूर्वक वर्णन श्री जीवाभिगम से जान लेना चाहिए।

+ भगवती शतक ११ उद्देशा १०।

देवता मेरुपर्वत पर खड़े हैं। उनकी ऐसी शीघ्र गति है कि वे चारों देवियां एक साथ बलिपिण्ड को फेंकें तो उनमें कोई देवता बलिपिण्ड को नीचे नहीं पड़ने दें, एक साथ भेल लें। वे देवता लोक का माप लेने के लिए निकलें। चार देवता चार दिशा में जावें। एक ऊपर जावे, एक नीचे जावे। इसी समय एक सेठ के घर एक हजार वर्ष की आयुष्य वाला बालक जन्मे। फिर वह बड़ा हो जाय। उसके माता पिता कालधर्म को प्राप्त हो जांय। अहो भगवान्! क्या इतने समय में लोक का अन्त आवे? हे गौतम! नहीं आवे। इसके बाद वह बालक भी कालधर्म को प्राप्त होगया तो क्या लोक का अन्त आवे? हे गौतम! नहीं आवे! उस बालक की सात पीढ़ी क्षय होगई तो क्या लोक का अन्त आवे? हे गौतम! नहीं आवे। उस बालक के हाड़ और हाड की मिंजी क्षय होगई तो क्या उतने समय में लोक का अन्त आवे? हे गौतम! नहीं आवे। अहो भगवान्! वह कितना क्षेत्र गया और कितना बाकी रहा? हे गौतम! बहुत गया और थोड़ा बाकी रहा। गये क्षेत्र से अगया क्षेत्र असंख्यातवें भाग है। अगये क्षेत्र से गया क्षेत्र असंख्यातगुणा है।

अब अलोक का परिमाण बतलाया जाता है—जैसे असत्-कल्पना से कल्पना कीजिये—मानुष्यक्षेत्र पर्वत के ऊपर आठ देवियाँ हाथ में बलिपिण्ड लेकर बाहर की तरफ मुख करके खड़ी हैं। उसी समय दस देवता मेरु पर्वत पर खड़े हैं। उनमें से हरेक की ऐसी शीघ्र गति है कि वे आठों देवियां एक साथ बलिपिण्ड फेंके। उनको वे देवता एक साथ भेल लेवे, नीचे न पड़ने

देवें। वे देवता अलोक का माप (परिमाण) लेने के लिए निकलें। चार तो चार दिशा में जावें, चार विदिशा में जावें, एक ऊपर जावे और एक नीचे जावे। उसी समय किसी सेठ के घर एक लाख वर्ष की आयुष्य का एक बालक जन्मा। वह बालक बड़ा होगया। उसके माता पिता कालधर्म को प्राप्त होगये। अहो भगवान्! क्या इतने समय में अलोक का माप आया? हे गौतम! नहीं आया। वह बालक लाख वर्ष की आयु पूर्ण करके कालधर्म को प्राप्त होगया। क्या इतने समय में अलोक का माप आया? हे गौतम! नहीं आया। उसकी सात पीढ़ी क्षय होगई, नाम गोत्र क्षय होगये। क्या इतने समय में अलोक का माप आया? हे गौतम! नहीं आया। अहो भगवान्! कितना क्षेत्र गया और कितना क्षेत्र बाकी रहा? हे गौतम! थोड़ा गया और बहुत क्षेत्र बाकी रहा। गये क्षेत्र से अगया क्षेत्र अनन्तगुणा है। अगये क्षेत्र से गया क्षेत्र अनन्तवें भाग है।

अब तिर्च्छा लोक में द्वीप समुद्रों का अधिकार चलता है सो कहते हैं—

अहो भगवान्! तिर्च्छालोक कितना बड़ा है? हे गौतम! जैसे असत्कल्पना से कल्पना कीजिये कि एक कूआ है जो चार कोस का लम्बा, चार कोस का चौड़ा, चार कोस का ऊँडा (गहरा) और बारह कोस झाझेरी परिधि वाला है। उसमें देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्र के जुगलिया (युगलिया) के एक दिन से लेकर सात दिन के जन्मे हुए बालक के केशों को लेकर एक एक केश के असंख्याता असंख्याता टुकड़े करके भरे

देवता मेरुपर्वत पर खड़े हैं। उनकी ऐसी शीघ्र गति है कि वे चारों देवियां एक साथ बलिपिण्ड को फेंकें तो उनमें कोई देवता बलिपिण्ड को नीचे नहीं पड़ने दें, एक साथ झेल लें। वे देवता लोक का माप लेने के लिए निकलें। चार देवता चार दिशा में जावें। एक ऊपर जावे, एक नीचे जावे। उसी समय एक सेठ के घर एक हजार वर्ष की आयुष्य वाला बालक जन्मे। फिर वह बड़ा हो जाय। उसके माता पिता कालधर्म को प्राप्त हो जांय। अहो भगवान्! क्या इतने समय में लोक का अन्त आवे? हे गौतम! नहीं आवे। इसके बाद वह बालक भी कालधर्म को प्राप्त होगया तो क्या लोक का अन्त आवे? हे गौतम! नहीं आवे। उस बालक की सात पीढ़ी क्षय होगई तो क्या लोक का अन्त आवे? हे गौतम! नहीं आवे। उस बालक के हाड और हाड की मिंजी क्षय होगई तो क्या इतने समय में लोक का अन्त आवे? हे गौतम! नहीं आवे। अहो भगवान्! वह कितना क्षेत्र गया और कितना बाकी रहा? हे गौतम! बहुत गया और थोड़ा बाकी रहा। गये क्षेत्र से अगया क्षेत्र असंख्यातवें भाग है। अगये क्षेत्र से गया क्षेत्र असंख्यातगुणा है।

अब अलोक का परिमाण बतलाया जाता है—जैसे असत् कल्पना से कल्पना कीजिये—मानुष्यक्षेत्र पर्वत के ऊपर आठ देवियाँ हाथ में बलिपिण्ड लेकर बाहर की तरफ मुख करके खड़ी हैं। उसी समय दस देवता मेरु पर्वत पर खड़े हैं। उनमें प्रत्येक की ऐसी शीघ्र गति है कि वे आठों देवियां एक साथ बलिपिण्ड फेंकें। उनको वे देवता एक साथ झेल लेवे, नीचे न पड़ने

जांय। टुकड़े इतने बारीक किये जांय कि हाथ में लेने पर दीखे नहीं, आंख में डालने पर रड़के (खटके) नहीं, केवली उनको जाने देखे किन्तु छद्मस्थ के नजर आवें नहीं। एक के दो टुकड़े हो सके नहीं। ऐसे केशों से उस कूप को ऐसा ठसाठस भर दे कि ऊपर चक्रवर्ती की सेना निकल जाय तो भी दबे नहीं दावानल (वन की अग्नि) लग जाय तो एक केश भी जले नहीं। अनुकूल प्रतिकूल हवा चले तो एक केश भी उड़े नहीं, पुष्करा वर्त मेघ बरसे तो एक केश भी भीजे नहीं; गंगा सिन्धु नदी का पूर (पाट) ऊपर होकर बह जाय तो भी उसका एक केश भी बहे नहीं। इस तरह उस कूए को ठसाठस भर दिया जाय। फिर कोई एक देव उन केशों को लेकर एक केश द्वीप में और एक केश समुद्र में क्रमशः डालता हुआ चला जाय और इस तरह कूआ खाली हो जाय तो भी तिर्च्छालोक का अन्त नहीं आता। अहो भगवान्। ऐसे कितने कूए खाली होने से तिर्च्छालोक का अन्त (पार) आ सकता है ? हे गौतम! २५ कोड़ाकोड़ी कूआ खाली हो तब अन्तिम केश का टुकड़ा स्वयंभूरमण समुद्र के हिस्से में आता है। आधे राजु में स्वयंभूरमण समुद्र है और आधे राजु में असंख्याता द्वीप समुद्र हैं। इस प्रकार एक राजु का तिर्च्छालोक है। सात राजु झाझेरा (कुछ अधिक) अधोलोक है और सात राजु मांठेरा (कुछ कम) ऊर्ध्वलोक है। लोक से आगे अलोक है।

अहो भगवान्! राजु किसे कहते हैं ? हे गौतम! जैसे

से लवण समुद्र में चारों दिशाओं में बयालीस बयालीस हजार योजन जाने पर चार वेलंधर पर्वत आते हैं। उनके नाम ये हैं— गोस्थूभ, दकभास, शंख और दकसीम। गोस्थूभ पर्वत सुवर्णमय पीला है। दकभास पर्वत अंकरत्नमय है। शंख पर्वत रजतमय (चांदीमय) है। दकसीम पर्वत स्फटिक रत्नमय है। इन चारों पर्वतों पर चार रक्षक देव रहते हैं। गोस्थूभ पर्वत पर गोस्थूभ देव है। दकभास पर्वत पर शिव देव है। शंख पर्वत पर शंख देव है और दकसीम पर्वत पर मनोशिल देव रक्षक निवास करता है।

जम्बूद्वीप की जगती से लवण समुद्र में चारों विदिशा में बयालीस बयालीस हजार योजन जाने पर चार अनुवेलंधर पर्वत आते हैं। उनके नाम ये हैं— कर्कोटक, कर्दमक, कैलाश और अरुण प्रभ। इन चार पर्वतों पर इन्हीं नाम वाले देव रहते हैं। ये चारों पर्वत रत्नमय हैं।

चार वेलंधर और चार अनुवेलंधर ये आठों पर्वत १७२१-१७२१ योजन ऊँचे हैं। ४३० योजन एक कोस के ऊँडे हैं। एक हजार बाईस योजन मूल में चौड़े हैं। ७२३ योजन मध्य में चौड़े हैं। ४२४ योजन ऊपर चौड़े हैं। इसकी मूल में परिधि ३२३२ योजन भाठेरी (कुछ कम) है। बीच की परिधि २२८६ योजन भाभेरी है। ऊपर की परिधि १३४१ योजन माठेरी है।

अहो भगवान्! लवण समुद्र में क्या रचना है? हे गौतम! लवण समुद्र में ७८८८ पाताल कलश हैं। उनमें चार पाताल कलश बड़े हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—पूर्व दिशा में वलय-

६५ अंगुल परिमाण जाने पर एक अंगुल ऊंडा है। ६५ मूठ (मुष्टि) परिमाण जाने पर एक मूठ ऊंडा है। ६५ विलांत (बालिस्त) जाने पर एक विलांत ऊंडा है। ६५ हाथ जाने पर एक हाथ ऊंडा है। ६५ कुक्षि (आधा धनुष) जाने पर एक कुक्षि ऊंडा है। ६५ धनुष जाने पर एक धनुष ऊंडा है। ६५ गाऊ (गव्यूति-दो कोस) जाने पर एक गाऊ ऊंडा है। ६५ योजन जाने पर एक योजन ऊंडा है। ६५०० योजन जाने पर एक सौ योजन ऊंडा है। ६५ हजार योजन जाने पर एक हजार योजन ऊंडा है ❀। सतरह हजार योजन पानी है। जम्बूद्वीप की जगती से बारह हजार योजन पूर्व दिशा में जाने पर चन्द्रमा के बारह द्वीप आते हैं। चन्द्र द्वीप में चन्द्र देव (चन्द्रमा ज्योतिषी) रहता है। जम्बूद्वीप की जगती से बारह हजार योजन पश्चिम दिशा में जाने पर सूर्य के बारह द्वीप आते हैं। सूर्य द्वीप में सूर्यदेव (सूर्य ज्योतिषी) रहता है। पश्चिम दिशा में गोस्थूभ नाम का द्वीप है। यहां सुस्थित देवता का निवास है। जम्बूद्वीप की जगती

❀ किसी किसी ग्रन्थ में ऐसा भी लिखा है कि— जम्बूद्वीप की जगती से प्रदेश प्रदेश करते हुए ९५००० योजन जाने पर यह ७०० योजन की वृद्धि होती है। एक हजार योजन जाने पर ७ योजन और [illegible] भाग की वृद्धि होती है। इस प्रकार ९५००० योजन जाने पर ७०० योजन पानी ऊंचा है। वहां १५३०० योजन का ऊंचा दगमाल (उदकमाल) है।

किसी किसी की ऐसी धारणा है। तत्त्व केवलिगम्य है।

से लवण समुद्र में चारों दिशाओं में बयालीस बयालीस हजार योजन जाने पर चार वेलंधर पर्वत आते हैं। उनके नाम ये हैं— गोस्थूभ, दकभास, शंख और दकसीम। गोस्थूभ पर्वत सुवर्णमय पीला है। दकभास पर्वत अंकरत्नमय है। शंख पर्वत रजतमय (चांदीमय) है। दकसीम पर्वत स्फटिक रत्नमय है। इन चारों पर्वतों पर चार रक्षक देव रहते हैं। गोस्थूभ पर्वत पर गोस्थूभ देव है। दकभास पर्वत पर शिव देव है। शंख पर्वत पर शंख देव है और दकसीम पर्वत पर मनोशिल देव रक्षक निवास करता है।

जम्बूद्वीप की जगती से लवण समुद्र में चारों विदिशा में बयालीस बयालीस हजार योजन जाने पर चार अनुवेलंधर पर्वत आते हैं। उनके नाम ये हैं— कर्कोटक, कर्दमक, कैलाश और अरुण प्रभ। इन चार पर्वतों पर इन्हीं नाम वाले देव रहते हैं। ये चारों पर्वत रत्नमय हैं।

चार वेलंधर और चार अनुवेलंधर ये आठों पर्वत १७२१-२१ योजन ऊँचे हैं। ४३० योजन एक कोस के ऊँडे हैं। एक हजार बाईस योजन मूल में चौड़े हैं। ७-३ योजन मध्य में चौड़े हैं। ४२४ योजन ऊपर चौड़े हैं। इसकी मूल में परिधि ३२३२ योजन माठेरी (कुछ कम) है। बीच की परिधि २२८६ योजन मामेरी है। ऊपर की परिधि १३४१ योजन माठेरी है।

अहो भगवान्! लवण समुद्र में क्या रचना है? हे गौतम! लवण समुद्र में ७८८८ पाताल कलश हैं। उनमें चार पाताल कलश बड़े हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—पूर्व दिशा में वलय-

मुख, दक्षिण दिशा में केतुमुख, पश्चिम दिशा में यूप और उत्तर दिशा में ईश्वर।

अहो भगवान्! ये कलश कितने लम्बे चौड़े हैं ? हे गौतम! एक लाख योजन जमीन में ऊँडे हैं। एक लाख योजन का मध्यम में पोला भाग है। दस हजार योजन का मुख है। एक हजार योजन की ठीकरी (नीचे के तल भाग की मोटाई) है। दस हजार योजन का पड़घा (घेरा) है।

अहो भगवान्! एक एक कलश में कितना कितना अन्तर है ? हे गौतम! हरेक कलश के बीच में २ लाख १६ हजार २६५ योजन का अन्तर है। एक एक अन्तर में छोटे कलशों की नौ नौ लड़ियां (लाईनें) हैं। पहली लड़ में २१५ कलश हैं। दूसरी लड़ में २१६ कलश हैं। तीसरी लड़ में २१७ कलश हैं ? इस तरह हरेक लड़ में एक एक कलश बढता गया है। नवमी लड़ में २२३ कलश हैं। कुल १६७१ कलश हैं। इस तरह चारों बड़े कलशों के अन्तरों में जान लेना चाहिए। इस तरह कुल ७८८४ (१९७१ × ४=७८८४) छोटे कलश हुए। चार बड़े कलश मिलाने पर कुल ७८८८ (७८८४ + ४=७८८८) कलश हुए।

अहो भगवान! इन कलशों में क्या भरा हुआ ? हे गौतम! ३३३३३३ योजन तो वायुकाय है। ३३३३३३ योजन वायुकाय और अप्काय दोनों हैं। ३३३३३३ योजन में अप्काय है। एक एक कलश के बीच में १६७१ छोटे कलश हैं। इस प्रकार चारों बड़े कलशों के बीच में ७८८४ छोटे कलश हैं।

झलक जम्बूद्वीप और धातकीखण्ड द्वीप में क्यों नहीं गिरती है ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप और धातकीखण्ड द्वीप में जो तीर्थंकर, केवली भगवान् चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रति-वासुदेव, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका समदृष्टि, चौदह नदियों की देवियां हैं, इनके अतिशय से एवं पुण्य से गतकाल में पानी की झलक पड़ी नहीं, वर्तमान में पड़ती नहीं और आगामी काल में पड़ेगी नहीं।

॥ तीसरा बोल समाप्त ॥

अहो भगवान् ! जम्बूद्वीप की खाड़ी में कितने योजन के मच्छ हैं ? हे गौतम ! नौ योजन के मच्छ हैं।

अहो भगवान् ! लवण समुद्र में कितने योजन के मच्छ हैं ? हे गौतम ! पांच सौ योजन के मच्छ हैं।

अहो भगवान् कालोदधि समुद्र में कितने योजन के मच्छ हैं ? हे गौतम ! सात सौ योजन के मच्छ हैं।

अहो भगवान् ! स्वयंभूरमण समुद्र में कितने योजन के मच्छ हैं ? हे गौतम ! एक हजार योजन के मच्छ हैं। बाकी असंख्यात समुद्रों में अल्प मच्छ हैं।

॥ चौथा बोल समाप्त ॥

अहो भगवान् ! जम्बूद्वीप आदि कितने लम्बे चौड़े हैं ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप एक लाख योजन का है। लवण समुद्र दो लाख योजन का है। धातकीखण्ड द्वीप चार लाख योजन का है। कालोदधि समुद्र आठ लाख योजन का है। पुष्करवर द्वीप १६

लाख योजन का है। उसके बीच में मानुष्योत्तर पर्वत है। यह मनुष्य क्षेत्र की हद (सीमा-मर्यादा) बांधता है। मनुष्योत्तर पर्वत बीच में आ जाने से पुष्करवर द्वीप के दो विभाग होगये हैं। इसलिए अर्द्ध पुष्करवर द्वीप आठ लाख योजन का है। मानुष्योत्तर पर्वत चूड़ी (कड़ण) के आकार है। यह १७२१ योजन का ऊंचा है। ४३० योजन एक कोस धरती में ऊंडा है। १०२२ योजन मूल में चौड़ा है। ७२३ योजन मध्य में चौड़ा है। ४२४ योजन मटेरा (कुछ कम) ऊपर चौड़ा है। यह पर्वत बैठे हुए सिंह के आकार है अर्थात् जिस प्रकार बैठा सिंह आगे से ऊंचा होता है और फिर क्रमशः नीचा होता है। इसी तरह यह पर्वत भी आगे से ऊंचा है फिर क्रमशः नीचा होता गया है। पर्वत के ऊपर सुवर्णकुमार देवों के चार कूट हैं। मानुष्योत्तर पर्वत मनुष्य क्षेत्र की मर्यादा बांधता है। इसलिए इधर (अन्दर की तरफ) आठ लाख योजन में मनुष्य रहते हैं। (बाहर की तरफ) आठ लाख योजन में तिर्यञ्च (पशु पक्षी) रहते हैं। यह सब मिला कर पुष्करवर द्वीप सोलह लाख योजन का है। पुष्कर समुद्र ३२ लाख योजन का है। वारुणी द्वीप (वरुण द्वीप) ६४ लाख योजन का है। वारुणी (वरुण) समुद्र एक करोड़ २८ लाख योजन का है। क्षीर (क्षीर) द्वीप २ करोड़ ५६ लाख योजन का है। क्षीर (क्षीर) समुद्र ५ करोड़ १२ लाख योजन का है। घृतद्वीप १० करोड़ २४ लाख योजन का है। घृत समुद्र २० करोड़ ४८ लाख योजन का है। इक्षुवर द्वीप ४० करोड़ ९६ लाख योजन का है। इक्षुवर

समुद्र ८१ करोड़ ६२ लाख योजन का है। नन्दीश्वर द्वीप १६३ करोड़ ८४ लाख योजन का है। उसके बीच में चार अंजन गिरि (अंजन पर्वत) हैं। वे ८४ हजार योजन के ऊंचे हैं। एक हजार योजन धरती में ऊंडे (गहरे) हैं। मूल में दस हजार योजन के लम्बे पोले हैं और ऊपर एक हजार योजन के लम्बे पोले हैं। इन पर्वतों के मूल की परधि ३१६२३ योजन जामेरी (कुछ अधिक) है। बीच की परधि ३१६२३ योजन माठेरी (कुछ कम) है। ऊपर की परिधि ३१६२ योजन है। इन चारों अंजन गिरि (अंजन पर्वत) के ऊपर एक एक सिद्धायतन है। यह १०० योजन का लम्बा, ५० योजन का पोला और ७२ योजन के ऊँचे हैं। इसके चारों दिशा में चार दरवाजे हैं। इन चार दरवाजों के देव, असुर, नाग, सुपर्ण ये चार देव मालिक हैं। ये चारों वाणव्यन्तर जाति के देव हैं। इनकी स्थिति एक पल्योपम की है। चारों अंजन गिरि (अंजन पर्वत) के ऊपर चार बावड़ियां हैं। इनमें इक्षुरस जैसा पानी भरा हुआ है ? हरेक बावड़ी १०० योजन लम्बी, ५० योजन पोली और १० योजन ऊंडी (गहरी) है। नीचे जमीन पर पूर्व दिशा के अंजन गिरि के चारों दिशा में चार बावड़ियां हैं। इनके नाम ये हैं—नन्दोत्तरा, नन्दा, आनन्दा, नन्दिवर्द्धना। दक्षिण दिशा के अंजन गिरि के चारों दिशा में चार बावड़ियां हैं। इनके नाम ये हैं—भद्रा, विशाला, कुमुदा, पुंडरिकिणी। पश्चिम दिशा के अंजन गिरि के चारों दिशा में चार बावड़ियां हैं। उनके नाम ये हैं—नन्दिसेना, अमोघा, गोथुभा, सुदर्शना। उत्तर दिशा के अंजनगिरि

के चारों दिशा में चार बावड़ियां हैं। इनके नाम ये हैं—विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता। ये बावड़ियां एक एक लाख योजन की लम्बी चौड़ी हैं। दस योजन की ऊंडी हैं। एक एक बावड़ी में एक एक दधिमुख पर्वत है। ये ६४ हजार योजन ऊंचे, एक हजार योजन ऊंडे, दस हजार योजन पोले हैं और नीचे से लेकर ऊपर तक सब जगह एक सरीखे चौड़े हैं। सब रत्नमय स्वच्छ (अच्छा आदि) यावत प्रतिरूप १६ उपमा सहित हैं। इनकी परिधि ३१६२३ योजन की है। हरेक दधिमुख पर्वत के ऊपर एक एक सिद्धायतन है। वह १०० योजन का लम्बा ५० योजन का पोला और ७२ योजन का ऊंचा है। इसके चार दरवाजे हैं। इनके नाम ये हैं—देव, असुर, नाग, सुवर्ण। इन चारों दरवाजों के इन्हीं नाम वाले चार देव रक्षक हैं। ये वाणव्यन्तर जाति के हैं। इनकी स्थिति एक पल्योपम की है। पूर्व पुण्य के उदय से सुख भोगते हुए विचरते हैं। एक बावड़ी से दूसरी बावड़ी के बीच में दो दो रतिकर पर्वत हैं। वे पर्वत एक हजार योजन के ऊंचे हैं। एक हजार गाऊ (कोस) धरती में ऊंडे हैं। दस हजार योजन के लम्बे चौड़े हैं। पलंग के संस्थान (आकार) हैं। ये सब रत्नमय हैं। इस प्रकार नन्दीश्वर द्वीप में ५२ पर्वत और ५२ सिद्धायतन हैं।

नन्दीश्वर समुद्र ३२७ करोड़ ६८ लाख योजन का है। उसके पार अरुणद्वीप, अरुण समुद्र, अरुणवर द्वीप, अरुणवर समुद्र, अरुणवरभास द्वीप, अरुणवरभास समुद्र, कुण्डलद्वीप, कुण्डल

समुद्र, कुण्डलवर द्वीप, कुण्डलवर समुद्र, कुण्डलवरभास द्वीप कुण्डलवरभास समुद्र। इसके बाद पन्द्रहवां रुचक द्वीप आता है। वहाँ से असंख्याता द्वीप समुद्र उल्लंघ कर आने पर अन्त में पांच द्वीप और पांच समुद्र एक नाम वाले आते हैं। उनके नाम ये हैं— देव द्वीप देव समुद्र, नाग द्वीप नाग समुद्र, यक्ष द्वीप यक्ष समुद्र, भूत द्वीप, भूत समुद्र, स्वयंभूरमण द्वीप, स्वयंभूरमण समुद्र। संसार में जितनी उत्तम वस्तुएं हैं। उन एक एक वस्तु के नाम वाले असंख्याता द्वीप समुद्र हैं सिर्फ अन्तिम पांच द्वीप समुद्र एक एक नाम वाले हैं यथा-देव द्वीप, देव समुद्र, नाग द्वीप नाग समुद्र, यक्ष द्वीप यक्ष समुद्र, भूत द्वीप भूत समुद्र, स्वयंभूरमण द्वीप स्वयंभूरमण समुद्र।

॥पांचवां बोल समाप्त॥

अहो भगवान्! इन सब द्वीप समुद्रों का आकार कैसा है? हे गौतम! जम्बूद्वीप थाल, रुपया, चक्की के पाट के समान गोल है। बाकी सब द्वीप समुद्र चूड़ी (कंकण, वलय) के आकार गोल हैं।

॥ छठा बोल समाप्त ॥

जम्बूद्वीप के आठ बोल चलते हैं सो कहते हैं—

पहला बोल— अहो भगवान्! जगती(?) कहाँ — हे गौतम! जम्बूद्वीप की दक्षिण जगती से उत्तर की तरफ (५२६ योजन छै कला (एक योजन के उन्नीस भाग में से छै भाग)

जम्बूद्वीप में आने पर वनिता नगरी आती है। वह १२ योजन लम्बी और ६ योजन चौड़ी है।

अहो भगवान्! वैताढ्य पर्वत कहां है? हे गौतम! वनिता नगरी से ११४।। योजन डेढ कला (एक योजन के उन्नीस भाग में से डेढ भाग) जाने पर वैताढ्य पर्वत आता है। वह रूप्यमय (चांदी का) है। वह ५० योजन चौड़ा और २५ योजन ऊँचा है। सवा छह योजन धरती में ऊँडा (गहरा) है। वैताढ्य पर्वत से आगे उत्तर भरत क्षेत्र है। वह २३८ योजन तीन कला का चौड़ा है। वह चुलहिमवन्त पर्वत तक है। चुलहिमवन्त पर्वत १०५२ योजन बारह कला का चौड़ा है। वह हैमवय (हैमवत) क्षेत्र तक है। हैमवय क्षेत्र २१०५ योजन पांच कला का चौड़ा है। हेमवय क्षेत्र महा हिमवन्त पर्वत तक है। महाहिमवन्त पर्वत ४२१० योजन दस कला का चौड़ा है। वह हरिवास (हरिवर्ष) क्षेत्र तक विस्तृत है। हरिवास क्षेत्र ८४२१ योजन एक कला का चौड़ा है। वह निषढ (निषध) पर्वत तक विस्तृत है। निषढ पर्वत १६८४२ योजन दो कला का चौड़ा है। वह महाविदेह क्षेत्र तक विस्तृत है। महाविदेह क्षेत्र ३३६८४ योजन चार कला का चौड़ा है। वह नीलवन्त पर्वत तक विस्तृत है। नीलवन्त पर्वत १६८४२ योजन दो कला का चौड़ा है। वह रम्यकवास क्षेत्र तक विस्तृत है। रम्यकवास क्षेत्र ८४२१ योजन एक कला का चौड़ा है। वह रुप्पि (रुक्मी) पर्वत तक विस्तृत है। वह रूपी पर्वत ४२१० योजन दस कला का चौड़ा है। वह हिरण्णवय (हैरण्यवत)

क्षेत्र तक विस्तृत है। हिरण्यवय क्षेत्र २१०५ योजन पांच कला का चौड़ा है। यह शिखरी पर्वत तक विस्तृत है। शिखरी पर्वत १०५२ योजन बारह कला का चौड़ा है। यह इरवर्त (ऐरवत) क्षेत्र तक विस्तृत है। इरवर्त (ऐरवत) क्षेत्र तक ५२६ योजन छह कला का चौड़ा है।

॥ इति प्रथम बोल समाप्त ॥

दूसरा बोल—अहो भगवान्! जम्बूद्वीप की जगती से पूर्व में क्या रचना है? हे गौतम! जम्बूद्वीप की जगती से पूर्व में जम्बूद्वीप में सीतामुख वन है। यह २६२२ योजन का चौड़ा है। यह पूर्व महाविदेह की विजयों तक विस्तृत है। हरेक विजय २२१२॥। योजन चौड़ी और १६५६२ योजन दो कला की लम्बी है। चार वक्षस्कार पर्वत हैं। हरेक पर्वत ५०० योजन का ऊंचा और ५०० योजन का चौड़ा है तथा १२५ योजन के ऊंडे हैं। वनके बीच में तीन नदियां हैं। वे १०५-१२५ योजन चौड़ी हैं। विजयों के बाद भद्रसाल वन है। यह २२००० योजन का लम्बा है और मेरु पर्वत एक तक विस्तृत है। मेरु पर्वत एक हजार योजन का ऊंडा है और ६६ हजार योजन ऊंचा है। दस हजार योजन चौड़ा है। यह पश्चिम के भद्रसाल वन तक विस्तृत है। पश्चिम का भद्रसाल वन २२००० योजन लम्बा है। यह पश्चिम-महाविदेह तक विस्तृत है। पश्चिम महाविदेह २००७३ योजन लम्बा है। यह सीतोदामुख वन तक विस्तृत है। सीतोदामुख वन २६२२ योजन

लम्बा है। वह पश्चिम की जगती तक विस्तृत है। मेरु पर्वत से ४५ हजार योजन पूर्व में और ४५ हजार योजन पश्चिम में तथा दस हजार का स्वयं मेरु पर्वत है। यह सब मिला कर जम्बूद्वीप पूर्व पश्चिम एक लाख योजन का विस्तृत है*।

तीसरा बोल—द्रह द्वार—इस जम्बूद्वीप में १६ महा द्रह हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं— देवकुरु क्षेत्र में पांच द्रह हैं–१. देवकुरु द्रह, २. निषध द्रह, ३. सुलस द्रह, ४. सूरद्रह, ५. विज्जु

---

* जम्बूद्वीप पूर्व पश्चिम एक लाख योजन का लम्बा है। वह इस प्रकार है—

पूर्व का सीतामुख वन २९२२ योजन का है। पश्चिम का सीतोदामुख वन २९२२ योजन का है। पूर्व महाविदेह की आठ विजय और पश्चिम महाविदेह की आठ विजय ये सोलह विजय ३५४०४ योजन (हरेक विजय २२१२॥। योजन की है। इसलिए २२१२॥।×१६ =३५४०४ योजन) की है। आठ वक्षस्कार पर्वत ४००० योजन (हरेक वक्षस्कार) पर्वत ५०० योजन का चौड़ा है। इसलिए ५००×८=४००० योजन) के हैं। वक्षस्कार पर्वतों के बीच की छह नदियां ७५० योजन (हरेक नदी १२५ योजन की है। इसलिए १२५×६ =७५० योजन) की है। पूर्व का भद्रसाल वन २२००० योजन का है और पश्चिम का भद्रसाल वन २२००० योजन का है। दोनों वनों के बीच मेरु पर्वत है, वह १०००० योजन का चौड़ा है। इस प्रकार जम्बूद्वीप पूर्व से पश्चिम एक लाख योजन (२९२२+२९२२+३५४०४+४०००+७५०+२२०००+२२०००+१००००=१००००० योजन का लम्बा है।

खण्ड द्वीप से कालोदधि समुद्र में जाती हैं। १४ लाख ५६ हजार ९० नदियां अर्द्ध पुष्करवर द्वीप से कालोदधि समुद्र में जाती हैं। १४ लाख ५६ हजार ९० नदियां मानुष्योत्तर पर्वत की जड़ों में विलय हो गई हैं।

॥ चौथा बोल समाप्त ॥

पांचवां बोल—खण्ड द्वार— यदि जम्बूद्वीप के समचौरस एक एक योजन के खण्ड किये जांय तो सात अरब ९० करोड़ ५६ लाख ९४ हजार १५० खण्ड होते हैं। शेष पौने दो गाउ पन्द्रह धनुष साठ अंगुल क्षेत्र बच जाता है। यदि ढाई द्वीप के समचौरस एक योजन के खण्ड किये जांय तो १६ लाख करोड़ ९०० करोड़ तीन करोड़ एक लाख पचास हजार खण्ड होते हैं। अढाई द्वीप में १५ कर्म भूमि और ३० अकर्म भूमि, ये ४५ क्षेत्र हैं जिनमें से ९ जम्बूद्वीप में, १८ धातकीखण्ड द्वीप में और १८ अर्द्ध पुष्करवर द्वीप में हैं। एक भरत, एक इरवर्त (ऐरवत) और एक महाविदेह ये तीन कर्मभूमि और देवकुरु, उत्तरकुरु, हरिवास, रम्यकवास, हैमवय, हिरण्यवय ये छह अकर्म भूमि, सब मिला कर ९ क्षेत्र जम्बूद्वीप में हैं। अढाई द्वीप में पर्वतों के ऊपर २२२५ कूट हैं ४६७ जम्बूद्वीप में, ९२९ धातकीखण्ड में और ९२९ अर्द्ध पुष्करवर द्वीप में हैं। अढाई द्वीप में ५१० तीर्थ हैं *। जि-

---

* ये समुद्र और नदी के तीर पर होने से तीर्थ कहे जाते हैं। देवता के स्थान हैं।

से १०२ जम्बूद्वीप में हैं, २०४ धातकीखण्ड द्वीप में हैं और २०४ अर्द्ध पुष्करवर द्वीप में हैं। अढाई द्वीप में ८० द्रह हैं। अढाई द्वीप में १७० विजय हैं। अढाई द्वीप में ९९ करोड़ ४० लाख ८ हजार ६०० रत्नों के कमल हैं। अढाई द्वीप में ७२ लाख ८० हजार ४५० नदियां हैं।

॥ पांचवां बोल समाप्त ॥

छठा बोल—पर्वत द्वार—जम्बूद्वीप में २६९ पर्वत शाश्वत हैं—६ वर्षधर पर्वत, एक मेरुपर्वत, ४ गजदन्ता पर्वत, ४ वृत्त वैताढ्य (गोल वैताढ्य), ४ गोपुच्छाकार १६, वक्षस्कार पर्वत, ३४ दीर्घ वैताढ्य (लम्बे वैताढ्य) और २०० काञ्चनगिरि। धातकीखण्ड द्वीप में ५४० पर्वत हैं। जम्बूद्वीप में जो पर्वत कहे हैं, धातकीखण्ड में उनसे दुगुने कह देने चाहिए। दो इषुकार पर्वत अधिक हैं। ये इषुकार पर्वत चार लाख योजन के लम्बे हैं, एक हजार योजन के चौड़े हैं और ५०० योजन के ऊँचे हैं। अर्द्ध पुष्करवर द्वीप में ५४० पर्वत हैं। जिस प्रकार धातकीखण्ड द्वीप में कहे उसी तरह कह देना चाहिए किन्तु इतनी विशेषता है कि इषुकार पर्वत ८ लाख योजन के लम्बे, एक हजार योजन के चौड़े और ५०० योजन के ऊँचे हैं। अढाई द्वीप में ये सब १३४९ पर्वत शाश्वत हैं।

॥ छठा बोल समाप्त ॥

सातवां बोल—आंतरा (अन्तर) और परिधिद्वार—जम्बूद्वीप के चार दरवाजे हैं। एक दरवाजे का दूसरे दरवाजे से ७९०५२॥

योजन माठेरा (कुछ कम) आंतरा (अन्तर) है। ३१६२२७ योजन ३ कोस १२८ धनुष १३॥ अंगुल झाझेरी (कुछ अधिक) परिधि है। लवण समुद्र के चार दरवाजे हैं। एक दरवाजे का दूसरे दरवाजे से ३९५२८० योजन एक कोस माठेरा अन्तर है। १५८११३९ योजन माठेरी परिधि है। धातकी खण्ड के चार दरवाजे हैं। एक दरवाजे का दूसरे दरवाजे से १०२७७३५ योजन तीन कोस का आंतरा (अन्तर) है। ४११०९६१ योजन माठेरी परिधि है। कालोदधि समुद्र के चार दरवाजे हैं। एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे का आंतरा २२ लाख ४२ हजार ६४६ योजन तीन कोस का है। इसकी परिधि १ लाख ७० हजार ६०५ योजन की है। पुष्करवर द्वीप के चार दरवाजे हैं। एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे का आंतरा ४८२२४६९ योजन माठेरा है। सम्पूर्ण पुष्करवर द्वीप की परिधि १९२८९८९४ योजन की है। अर्द्धपुष्करवर द्वीप की परिधि १४२३०२४९ योजन की है।

॥ सातवां थोक समाप्त ॥

आठवां थोक—चन्द्रसूर्य द्वार—जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा और दो सूर्य हैं। १७६ ग्रह ५६ नक्षत्र हैं। १३३९५० कोड़ाकोड़ी तारा हैं। लवण समुद्र में ४ चन्द्रमा, ४ सूर्य, ३५२ ग्रह, ११२ नक्षत्र, २६७९०० कोड़ाकोड़ी तारा हैं। धातकी खण्ड द्वीप में १२ चन्द्रमा, १२ सूर्य, १०५६ ग्रह, ३३६ नक्षत्र, ८०३७०० कोड़ाकोड़ी तारा हैं। कालोदधि समुद्र में ४२ चन्द्रमा, ४२ सूर्य, ३६९६ ग्रह, ११७६

नक्षत्र, २८१२६५० कोड़ाकोड़ी तारा हैं। अर्द्ध पुष्करवर में ७२ चन्द्रमा, ७२ सूर्य, ६३३६ ग्रह, २०१६ नक्षत्र, ४८२२२०० कोड़ाकोड़ी तारा हैं। अढाई द्वीप में १३२ चन्द्रमा, १३२ सूर्य, ११६७६ ग्रह, ३६६६ नक्षत्र हैं, ८८४०७०० कोड़ाकोड़ी तारा हैं। पूर्ण पुष्करवर द्वीप में १४४ चन्द्रमा, १४४ सूर्य हैं। पुष्करवर समुद्र में ४६२ चन्द्रमा, ४६२ सूर्य हैं। वरुण द्वीप में १६८० चन्द्रमा, १६८० सूर्य हैं। वरुण समुद्र में ५७३६ चन्द्रमा, ५७३६ सूर्य हैं। क्षीरवर द्वीप में १९५८४ चन्द्रमा, १९५८४ सूर्य हैं। क्षीरवर समुद्र में ६६८२४ चन्द्रमा, ६६८२४ सूर्य हैं। घृतवर द्वीप में २२८२८८ चन्द्रमा, २२८२८८ सूर्य हैं। घृतवर समुद्र में ७७९४२४ चन्द्रमा, ७७९४२४ सूर्य हैं। इक्षुवर द्वीप में २६६११२० चन्द्रमा, २६६११२० सूर्य हैं। इक्षुवर समुद्र में ९०८५६३२ चन्द्रमा, ९०८५६३२ सूर्य हैं। नन्दीश्वर द्वीप में १०५९०९८८८ चन्द्रमा, १०५९०९८८८ सूर्य हैं*। पिछले सब मिला कर, इनसे तिगुणा कर लेना चाहिए। संख्याता योजन के द्वीप समुद्रों में संख्याता चन्द्रमा, संख्याता सूर्य हैं। असंख्याता योजन के द्वीप समुद्रों में असंख्याता चन्द्रमा, असंख्याता सूर्य हैं। अढाई द्वीप के अन्दर वाले ज्योतिषी और

---

* अढाई द्वीप के ज्योतिषी चर हैं (चलते हैं) अढाई द्वीप के बाहर के ज्योतिषी स्थिर हैं। अढाई द्वीप के ज्योतिषियों की ज्योति शान्त है और अढाई द्वीप के बाहर वाले ज्योतिषियों की ज्योति शान्त ही है।

अढाई द्वीप के बाहर वाले ज्योतिषी देवों की अवगाहना और स्थिति बराबर है। अढाई द्वीप के अन्दर वाले ज्योतिषी देवों का संठाण (संस्थान) आधे कबीठ के आकार है, और अढाई द्वीप से बाहर वाले ज्योतिषी देवों का संठाण पकी हुई ईंट के आकार है। ज्योतिषी देवों के और अलोक के ११११ योजन की दूरी है अर्थात् ज्योतिषी देवों से ११११ योजन आगे अलोक है। सब ज्योतिषी स्फटिक रत्नमय हैं।

॥ आठवां बोल समाप्त ॥

नव बोल— अहो भगवान्! ज्योतिषी देव धरती से कितने ऊंचे हैं? हे गौतम! सम भूमि भाग से ७९० योजन तारा का विमान ऊंचा है। ८०० योजन सूर्य का विमान ऊंचा है। ८८० योजन चन्द्रमा का विमान ऊंचा है। ८८४ योजन नक्षत्र का विमान ऊंचा है। ८८८ योजन बुध का विमान ऊंचा है। ८९१ योजन शुक्र का विमान ऊंचा है। ८९४ योजन बृहस्पति का विमान भी ऊंचा है। ८९७ योजन मंगल का विमान ऊंचा है। ९०० योजन शनिश्चर का विमान ऊंचा है। ११० योजन में सब ज्योतिषी देव हैं।

॥ नवम बोल समाप्त ॥

अहो भगवान्! ज्योतिषी देवों के विमान कितने लम्बे चौड़े हैं? हे गौतम! चन्द्र का विमान एक योजन के ६१ भागों में

से २६ भाग (२६/६१) लम्बा चौड़ा है। इकसठिया अठ्ठाईस भाग (२८/६१) मोटा (जाडा) है। तिगुणी झाझेरी परिधि है। सूर्य का विमान एक योजन के इकसठिया अड़तालीस भाग लम्बा चौड़ा है। चौबीस भाग (२४/६१) मोटा (जाडा) है। तिगुणी झाझेरी परिधि है। ग्रह का विमान दो गाऊ का लम्बा चौड़ा है, एक गाऊ का मोटा है, तिगुणी झाझेरी परिधि है। नक्षत्र का विमान एक गाऊ का लम्बा चौड़ा है, आधा गाऊ का मोटा (जाडा) है, तिगुणी झाझेरी परिधि है। तारा का विमान आधा गाऊ का लम्बा चौड़ा है, पाव गाऊ का मोटा है, तिगुणी झाझेरी परिधि है।

॥ दूसरा बोल समाप्त ॥

अहो भगवान् ! ज्योतिषी देवों के विमानों को कितने देव उठाते हैं ? हे गौतम ! चन्द्रमा और सूर्य के विमान को सोलह सोलह हजार देवता उठाते हैं। उनमें से चार हजार देवता पूर्व दिशा में सिंह के रूप से उठाते हैं। दक्षिण दिशा में चार हजार देवता हाथी के रूप से उठाते हैं। पश्चिम दिशा में चार हजार देवता वृषभ (बैल) के रूप से उठाते हैं। उत्तर दिशा में चार हजार देवता अश्व (घोड़ा) के रूप से उठाते हैं। ग्रह के विमान को आठ हजार देवता उठाते हैं। दो दो हजार देवता चारों ही दिशा में पूर्ववत् (सिंह, हाथी, बैल, घोड़ा) के रूप से उठाते हैं। नक्षत्र के विमान को चार हजार देवता उठाते हैं।

चारों ही दिशा में एक एक हजार देवता पूर्ववत् रूप से उठाते हैं। तारा के विमान को दो हजार देवता उठाते हैं। चारों ही दिशा में पांच पांच देवता पूर्ववत् रूप से उठाते हैं।

॥ तीसरा बोल समाप्त ॥

अहो भगवान् ! ज्योतिषी देवों की गति (चाल) कैसी है? हे गौतम ! चन्द्रमा की गति सब से मन्द है, उससे सूर्य की गति शीघ्र है। उससे ग्रह की गति शीघ्र है। उससे नक्षत्र की गति शीघ्र है। उससे तारा की गति शीघ्र है।

॥ चौथा बोल समाप्त ॥

अहो भगवान् ! ज्योतिषी देवों में परस्पर कितना अन्तर (दूरी) है? हे गौतम ! अढाई द्वीप के बाहर एक चन्द्रमा का दूसरे चन्द्रमा से एक लाख योजन का अन्तर है। एक सूर्य का दूसरे सूर्य से एक लाख योजन का अन्तर है। चन्द्रमा और सूर्य के बीच में पचास हजार योजन का अन्तर (दूरी) है। अढाई द्वीप में ज्योतिषियों का अन्तर दो प्रकार का है— व्याघात आसरी* और निर्व्याघात आसरी। व्याघात आसरी जघन्य अन्तर २६६ योजन का है। वह इस प्रकार है कि निषध

---

* किसी वस्तु का बीच में आजाना व्याघात कहलाता है। किसी भी वस्तु का बीच में आजाना नहीं, निर्व्याघात (स्वाभाविक) कहलाता है।

और नीलवन्त पर्वत चार चार सौ योजन के ऊंचे हैं। उनके ऊपर पांच पांच सौ योजन के कूट हैं। वे २५०-२५० योजन के मोटे (जाडे) हैं। उनसे आठ आठ योजन की दूरी पर ज्योतिषी चक्र है। इस प्रकार २६६ योजन (८+८+२५०=२६६) का अन्तर है। यह जघन्य अन्तर है। उत्कृष्ट अन्तर १२२४२ योजन का है। वह इस प्रकार हैं कि मेरु पर्वत दस हजार योजन का चौड़ा हैं। उससे ज्योतिषी चक्र ११२१ योजन दूर है। इस प्रकार १२२४२ योजन (११२१+११२१ + १०००० = १२२४२ योजन) उत्कृष्ट अन्तर है। निर्व्याघात आसरी जघन्य पांच सौ धनुष, उत्कृष्ट दो गाऊ का अन्तर है।

॥ पांचवां बोल समाप्त ॥

अहो भगवान्! सूर्य किस तरफ कितना तपता है? हे गौतम! सूर्य १०० योजन ऊंचा तपता है। १८०० योजन नीचा तपता है। वह इस प्रकार की पश्चिम महाविदेह की पांचवीं सलिलावती विजय एक हजार योजन की ऊंडी है और सूर्य सम भूमिभाग से ८०० योजन ऊंचा है। इस प्रकार नीचा १८०० योजन तपता है। तिर्च्छा ४७२६३ योजन और एक योजन का साठिया इक्कीस भाग तपता है। सूर्य के विमान के नीचे केतु का विमान है। गति (चाल) में फर्क आने से जब यह सूर्य के विमान के आडा (सामने) आ जाता है तब सूर्यग्रहण होता है। सूर्यग्रहण जघन्य छह महीनों में होता है और उत्कृष्ट ४८ वर्ष में होता है।

केतु का विमान काले रत्नों का है। चन्द्रमा के विमान के नीचे राहु का विमान है। वह काले रत्नों का है*। राहु दो प्रकार का है—नित्य राहु और पर्व राहु। नित्य राहु कृष्ण पक्ष में (अंधेरे पक्ष में) प्रतिदिन चन्द्रमा की एक एक कला को ढकता जाता है यावत् अमावस्या के दिन सब कलाओं को ढक लेता है। शुक्ल पक्ष में (उजियाले पक्ष में) प्रतिदिन एक एक कला को खुली छोड़ता जाता है यावत् पूर्णिमा के दिन सब कलाओं को खुली छोड़ देता है तब सम्पूर्ण चन्द्रमा उघाड़ा रहता है। जब पर्व राहु चन्द्रमा के आड़ा (सामने) आ जाता है तब चन्द्रग्रहण होता है। चन्द्र ग्रहण जघन्य छह महीनों में होता है और उत्कृष्ट ४२ महीनों में होता है।

॥ छठा बोल समाप्त ॥

अहो भगवान्! सूर्य के कितने मण्डल हैं? हे गौतम! सूर्य के १८४ मंडल हैं। उनमें से ११९ मण्डल लवण समुद्र में हैं और ६५ मंडल जम्बूद्वीप में हैं।

अहो भगवान्! चन्द्रमा के कितने मण्डल हैं? हे गौतम! चन्द्रमा के १५ मंडल हैं उनमें से दस मण्डल लवण समुद्र में हैं और पांच मंडल जम्बूद्वीप में हैं।

अहो भगवान्! इन मण्डलों में परस्पर कितना अन्तर है? हे गौतम! सूर्य के एक मण्डल से दूसरे मण्डल में दो दो योजन

* श्री भगवती सूत्र में राहु के विमान के पांच वर्ण का कथन किया गया है।

अन्तर (दूरी) है। चन्द्रमा के मण्डल से दूसरे मण्डल का अन्तर ३५ योजन भाझेरा है।

अहो भगवान्! नक्षत्र के कितने मण्डल कहे गये हैं? हे गौतम! नक्षत्र के आठ मंडल कहे गये हैं।

अहो भगवान्! जम्बूद्वीप में नक्षत्र के कितने मण्डल कहे गये हैं? हे गौतम! जम्बूद्वीप में नक्षत्र के दो मंडल कहे गये हैं। अहो भगवान्! वे जम्बूद्वीप में कितना क्षेत्र अवगाहन कर रहे हुए हैं? हे गौतम! वे जम्बूद्वीप में १८० योजन अवगाहन कर रहे हुए हैं।

अहो भगवान्! लवण समुद्र में नक्षत्र के कितने मण्डल कहे गये हैं? हे गौतम! छह मण्डल कहे गये हैं। अहो भगवान्! वे लवण समुद्र में कितने योजन अवगाहन कर रहे हुए हैं? हे गौतम! लवण समुद्र में ३३० योजन अवगाहन कर नक्षत्र के मण्डल रहे हुए हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीप और लवण समुद्र में सब मिल कर नक्षत्र के आठ मण्डल हैं।

अहो भगवान्! सब से आभ्यन्तर नक्षत्र मण्डल से सब से बाहर के नक्षत्र मण्डल तक कितना अन्तर है? हे गौतम! उसमें ५१० योजन का अन्तर है।

अहो भगवान्! एक एक नक्षत्र मण्डल में कितना अन्तर है? हे गौतम! दो दो योजन का अन्तर है।

अहो भगवान्! नक्षत्र मण्डल कितने लम्बे चौड़े और कितनी परिधि वाले हैं? हे गौतम! एक गाऊ के लम्बे चौड़े हैं और

उससे तिगुणी झाझेरी परिधि वाले हैं और आधे गाऊ के मोटे हैं।

अहो भगवान्! जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से सब से आभ्यन्तर नक्षत्र मण्डल तक कितना अन्तर है? हे गौतम! ४४८२० योजन का अन्तर है।

अहो भगवान्! जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से सब से बाहर के नक्षत्र मण्डल का कितना अन्तर है? हे गौतम! ४५३३० योजन का अन्तर है।

॥ सातवां बोल समाप्त ॥

अहो भगवान्! ज्योतिषी देवों में किसकी ऋद्धि किससे न्यूनाधिक (कम ज्यादाह) है? हे गौतम! चन्द्रमा की ऋद्धि सब से अधिक है। उससे सूर्य की ऋद्धि अल्प है। उससे ग्रह की ऋद्धि अल्प है, उससे नक्षत्र की ऋद्धि अल्प है, उससे तारा की ऋद्धि अल्प है।

॥ आठवां बोल समाप्त ॥

अहो भगवान्! एक चन्द्रमा का कितना कितना परिवार है? हे गौतम! एक चन्द्रमा का परिवार ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र, ६६९७५ कोडाकोड+ ताराओं के विमान (परिवार) है।

अहो भगवान्! ज्योतिषी देवों की क्या अल्प बहुत्व है?

+ एक करोड़ को एक करोड़ से गुणा करने से जितनी संख्या आवे उसको कोडाकोड कहते हैं।

इससे तिगुणी झाझेरी परिधि वाले हैं और आधे गाऊ के मोटे हैं।

अहो भगवान्! जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से सब से आभ्यन्तर नक्षत्र मण्डल तक कितना अन्तर है? हे गौतम! ४४८२० योजन का अन्तर है।

अहो भगवान्! जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से सब से बाहर के नक्षत्र मण्डल का कितना अन्तर है? हे गौतम! ४५३३० योजन का अन्तर है।

॥ सातवां बोल समाप्त ॥

अहो भगवान्! ज्योतिषी देवों में किसकी ऋद्धि किससे न्यूनाधिक (कम ज्यादा) है? हे गौतम! चन्द्रमा की ऋद्धि सब से अधिक है। उससे सूर्य की ऋद्धि अल्प है। उससे ग्रह की ऋद्धि अल्प है, उससे नक्षत्र की ऋद्धि अल्प है, उससे तारा की ऋद्धि अल्प है।

॥ आठवां बोल समाप्त ॥

अहो भगवान्! एक चन्द्रमा का कितना कितना परिवार है? हे गौतम! एक चन्द्रमा का परिवार ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र, ६६९७५ कोड़ाकोड़+ ताराओं के विमान (परिवार) हैं।

अहो भगवान्! ज्योतिषी देवों की क्या अल्प बहुत्व है?

+ एक करोड़ को एक करोड़ से गुणा करने से जितनी संख्या आवे उसको कोड़ाकोड़ कहते हैं।

हे गौतम ! सब से थोड़े चन्द्रमा सूर्य हैं किन्तु वे परस्पर तुल्य हैं। नसे नक्षत्र संख्यात गुणा अधिक हैं, उनसे ग्रह संख्यात गुणा धिक हैं, उनसे तारा संख्यात गुणा अधिक हैं।

अहो भगवान् ! ज्योतिषी देवों की परखदा (परिषद्) कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! तीन प्रकार है—आभ्यन्तर परिषद्, ाय परिषद्, बाह्य परिषद्। आभ्यन्तर परिषद् में ८००० देव हैं, ..्य परिषद् में १०००० देव हैं और बाह्य परिषद् में १२००० देव हैं। ४००० सामानिक देव हैं, १६००० आत्म रक्षक देव हैं। चार चार अग्रमहिषियां हैं। एक एक अग्रमहिषी का परिवार चार चार हजार देवियां है। एक एक देवी चार चार हजार रूप वैक्रिय करती हैं। देवियां जितने रूप वैक्रिय करती हैं, इन्द्र उतने ही रूप वैक्रिय करता है।

॥ नवमां बोल समाप्त ॥

वैमानिक देवों के छह बोल

पहला बोल—इस जम्बूद्वीप के सम भूमि भाग से असंख्याता कोड़ाकोड़ योजन ऊंचा जाने पर पहला दूसरा देवलोक आता है। यह चांदे* के आकार है यहां से (पहले दूसरे देवलोक से) असंख्याता कोड़ाकोड़ योजन ऊंचा जाने पर तीसरा चौथा देवलोक आता है, यह भी चांदे के आकार है। उससे असंख्याता कोड़ाकोड़ योजन ऊंचा जाने पर पांचवां छठा सातवां आठवां देवलोक आता है। यह पेड़ा+ के आकार है। यहां से असंख्याता कोड़ाकोड़ योजन ऊपर जाने पर नवमां दसवां देवलोक आता है। यह चांदे के आकार है। यहां से असंख्याता कोड़ाकोड़ योजन ऊपर जाने पर ग्यारहवां बारहवां देवलोक आता है। यह भी चांदे के आकार है। यहां से असंख्याता कोड़ाकोड़ योजन ऊपर जाने पर पहला ग्रैवेयक आता है। नव ग्रैवेयक की तीन त्रिक हैं। तीन तीन ग्रैवेयकों की एक एक त्रिक है। ये ग्रैवेयक एक

---

* दो बड़े पत्थर पास पास में रखे हुए हों उनको चांदा कहते हैं।

+ एक बड़े के ऊपर दूसरा पत्थर रखा हुआ हो उसको पेड़ा कहते हैं।

के ऊपर दूसरा और दूसरे के ऊपर तीसरा, इस प्रकार एक बेड़े के आकार है। वहां से असंख्याता कोडाकोड योजन ऊपर जाने पर पांच अनुत्तर विमान आते हैं वे कच्छ्रक× के आकार है।

अहो भगवान्! ये देवलोक समभूमि भाग से कितने ऊंचे हैं? हे गौतम! पहला दूसरा देवलोक समभूमि भाग से डेढ़ राजू ऊंचा है। तीसरा चौथा देवलोक ढाई राजू ऊंचा है। पांचवां देवलोक सवा तीन राजू ऊंचा है। छठा देवलोक साढ़े तीन राजू ऊंचा है। सातवां देवलोक पौने चार राजू ऊंचा है। आठवां देवलोक चार राजू ऊंचा है। नववां दसवां देवलोक साढ़े चार राजू ऊंचा है। ग्यारहवां बारहवां देवलोक के पांच राजू ऊंचा है। नवग्रैवेयक की पहली त्रिक साढ़े पांच राजू ऊंची है। दूसरी त्रिक पौने छह राजू ऊंची है। तीसरी त्रिक छह राजू ऊंची है। पांच अनुत्तर विमान सात राजू माठेरा (कुछ कम) है।

अहो भगवान्! ये विमान किसके आधार पर रहे हुए हैं? हे गौतम! पहला दूसरा देवलोक घनोदधि के आधार पर है। तीसरा, चौथा और पांचवां देवलोक घनवात के आधार पर है। छठा सातवां आठवां देवलोक घनोदधि घनवात के आधार पर है। नववां दसवां ग्यारहवां बारहवां देवलोक, नवग्रैवेयक, पांच अनुत्तर विमान आकाश के आधार पर हैं।

॥ पहला बोल समाप्त ॥

× विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, सर्वार्थसिद्ध ये पांच अनुत्तर विमान हैं। विजय, वैजयन्त जयन्त अपराजित ये चार विमान चार दिशाओं में हैं और बीच में सर्वार्थसिद्ध विमान है। इनका आकार इस प्रकार है—

देवलोकों के नाम	वृत्त (गोल) विमान	त्र्यस्र (त्रिकोण)	चतुरस्र (चौकोण)	पंक्ति बद्ध	पुष्प प्रकीर्णक	कुल संख्या
१ सौधर्म	७२७	४९४	४८६	१७०७	३१९८२९३	३२ लाख
२ ईशान	२३८	४९४	४८६	१२१८	२७९८७८२	२८ लाख
३ सनत्कुमार	५२२	३५६	३५८	१२३६	११९८७६४	१२ लाख
४ माहेन्द्र	१७०	३५६	३५८	८८४	७९९११६	८ लाख
५ ब्रह्मलोक	२७४	२८४	२०६	८३४	३९९१६६	४ लाख
६ लान्तक	१९९	१९३	१९३	५८५	४९४१५	५० हजार
७ महाशुक्र	१२८	१३६	१३२	३९६	३९६०४	४० हजार
८ सहस्रार	१०८	१११	१०८	३३२	५६६८	६ हजार

देवलोकों के नाम	वृत्त (गोल) विमान	त्र्यस्र (त्रिकोण)	चतुरस्र (चौकोण)	पंक्ति बद्ध	पुष्पावकीर्णक	कुल संख्या
१ सौधर्म	७२७	४९४	४८६	१७०७	३१९८२९३	३२ लाख
२ ईशान	२३८	४९४	४८६	१२१८	२७९८७८२	२८ लाख
३ सनत्कुमार	४२२	३५६	३४८	१२२६	११९८७७४	१२ लाख
४ माहेन्द्र	१७०	३५६	३४८	८७५	७९९१२५	८ लाख
५ ब्रह्मलोक	२७४	२८४	२७६	८३४	३९९१६६	४ लाख
६ लान्तक	१९९	१९३	१९३	५८५	४९४१५	५० हजार
७ महाशुक्र	१३८	१३६	१३२	३९६	३९६०४	४० हजार
८ सहस्रार	१०८	११६	१०८	३३२	५६६८	६ हजार

९-१० आणत प्राणत	८८	९२	८८	२६८	१३२	४००
११-१२ आरण अच्युत	६४	७२	६८	२०४	८९६	३००
पहली त्रिक	३५	४०	३६	१११	×	१११
दूसरी त्रिक	२३	२८	२४	७५	३२	१०७
तीसरी त्रिक	११	१६	१२	३९	६१	१००
अनुत्तर विमान	१	४	×	५	×	५
				७८७४		

अहो भगवान्! इन देवलोकों में कितने कितने प्रतर हैं? हे गौतम! पहले दूसरे देवलोक में तेरह प्रतर हैं। तीसरे चौथे देवलोक में बारह प्रतर हैं। पांचवें देवलोक में छह प्रतर हैं। छठे देवलोक में पांच प्रतर हैं। सातवें देवलोक में चार प्रतर हैं। आठवें देवलोक में चार प्रतर हैं। नवमें दसवें देवलोक में चार प्रतर हैं। ग्यारहवें बारहवें देवलोक में चार प्रतर हैं। नवग्रैवेयक में नौ प्रतर हैं। पांच अनुत्तर विमानों में एक प्रतर है। ये सब मिला कर ६२ प्रतर हैं।

॥ दूसरा बोल समाप्त ॥

अहो भगवान्! इन देवलोकों के क्या चिन्ह हैं? हे गौतम! पहले देवलोक के मृग का चिन्ह है। दूसरे देवलोक के महिष (भैंसा) का चिन्ह है। तीसरे देवलोक के सूअर का चिन्ह है। चौथे देवलोक के सिंह का चिन्ह है। पांचवें देवलोक के बकरे का चिन्ह है। छठे देवलोक के मेंढक का चिन्ह है। सातवें देवलोक के अश्व (घोड़ा) का चिन्ह है। आठवें देवलोक के गज (हाथी) का चिन्ह है। नवमें दसवें देवलोक के सर्प का चिन्ह है। ग्यारहवें बारहवें देवलोक के वृषभ (बैल) का चिन्ह है।

अहो भगवान्! इन देवलोकों में कितने प्रकार की परखदा (परिषद) है? हे गौतम! तीन प्रकार की परिषद् है— आभ्यन्तर परिषद्, मध्य परिषद्, बाह्य परिषद्।

अहो भगवान्! इन तीन प्रकार की परिषद् में कितने कितने

देव हैं ? हे गौतम ! पहले देवलोक की आभ्यन्तर परिषद् में १२००० देव हैं, मध्यम परिषद् में १४००० देव हैं, बाह्य परिषद् में १६००० देव हैं। दूसरे देवलोक की आभ्यन्तर परिषद् में १०००० देव हैं, मध्यम परिषद् में १२००० देव हैं, बाह्य परिषद् में १४००० देव हैं। तीसरे देवलोक की आभ्यन्तर परिषद् में ८००० देव हैं, मध्यम परिषद् में १०००० देव हैं, बाह्य परिषद् में १२००० देव हैं। चौथे देवलोक की आभ्यन्तर परिषद् में ६००० देव हैं। मध्यम परिषद् में ८००० देव हैं, बाह्य परिषद् में १०००० देव हैं। पांचवें देवलोक की आभ्यन्तर परिषद् में ४०००, मध्यम परिषद् में ६०००, बाह्य परिषद् में ८००० देव हैं। छठे देवलोक की आभ्यन्तर परिषद् में २०००, मध्यम परिषद् में ४०००, बाह्य परिषद् में ६००० देव हैं। सातवें देवलोक की आभ्यन्तर परिषद् में १०००, मध्यम परिषद् में २०००, बाह्य परिषद् में ४००० देव हैं। आठवें देवलोक की आभ्यन्तर परिषद् में ५००, मध्यमपरिषद् में १०००, बाह्य परिषद् में २००० देव हैं। नवमें दसवें देवलोक की आभ्यन्तर परिषद् में २५०, मध्यम परिषद् में ५००, बाह्य परिषद् में १००० देव हैं ? ग्यारहवें बारहवें देवलोक की आभ्यन्तर परिषद् में १२५, मध्यम परिषद् में २५०, बाह्य परिषद् में ५०० देव हैं।

पहले देवलोक में सामानिक देव ८४०००, दूसरे में ८००००, तीसरे में ७२०००, चौथे में ७००००, पांचवें में ६००००, छठे में ५००००, सातवें में ४००००, आठवें में ३००००, नवमें दसवें

में २००००, ग्यारहवें बारहवें में १०००० सामानिक देव हैं। जिस देवलोक में जितने सामानिक देव हैं, उनसे चौगुणा आत्मरक्षक देव हैं।

अहो भगवान्! इन तीन परिषद् के देव किस तरह से आते हैं? हे गौतम! आभ्यन्तर परिषद् के देव बुलाने से आते हैं और भेजने से जाते हैं। मध्यम परिषद् के देव बुलाने से आते हैं और बिना भेजे हुए वापिस जाते हैं। बाह्य परिषद् के देव बिना बुलाये आते हैं और बिना भेजे हुए जाते हैं।

अहो भगवान्! इन तीन परिषद् का क्या काम है? हे गौतम! आभ्यन्तर परिषद् के साथ इन्द्र सलाह (विचार विमर्श) करते हैं। मध्यम परिषद् को अपना निश्चय सुनाते हैं और बाह्य परिषद् को आज्ञा देते हैं। सब इन्द्रों के ये तीन तीन परिषद् हैं।

अहो भगवान्! हरेक इन्द्र के कितनी कितनी अग्रमहिषियां हैं? हे गौतम! पहले दूसरे देवलोक के इन्द्र के आठ आठ अग्रमहिषियां हैं (इन्द्राणियां) हैं। एक एक अग्रमहिषी के सोलह सोलह हजार देवियों का परिवार है। भोग भोगने के लिए एक एक अग्रमहिषी सोलह सोलह हजार रूप वैक्रिय करती हैं। पहले देवलोक में छह लाख अपरिगृहीता देवियों के विमान हैं। दूसरे देवलोक में चार लाख अपरिगृहीता देवियों के विमान हैं। चार अनुत्तर विमान त्रिकोण हैं। सर्वार्थ सिद्ध विमान गोल है। सब इन्द्रों के सात सात अनीकाएं हैं। [illegible]

आमत्रिंशक देव हैं। ये माता पिता एवं देवगुरु तुल्य पूजनीय होते हैं। सब देवलोकों के ८४९७०२३ विमान हैं।

अहो भगवान्! पहले दूसरे देवलोक में कितने प्रतर हैं और उनकी कितनी स्थिति है? हे गौतम! पहले दूसरे देवलोक में १३ प्रतर हैं। पहले प्रतर में एक सागर के तेरहवें दो भाग ($\frac{२}{१३}$) स्थिति है। दूसरे में तेरहवें चार भाग ($\frac{४}{१३}$) स्थिति है। तीसरे में तेरहवें छह भाग ($\frac{६}{१३}$) स्थिति है। चौथे में तेरहवें आठ भाग ($\frac{८}{१३}$) स्थिति है। पांचवें में तेरहवें दस भाग ($\frac{१०}{१३}$) स्थिति है। छठे में तेरहवें बारह भाग ($\frac{१२}{१३}$) स्थिति है। सातवें में एक सागर और तेरहवां एक भाग ($\frac{१}{१३}$) स्थिति है। आठवें में एक सागर और तेरहवें तीन भाग ($\frac{३}{१३}$) स्थिति है। नवमें में एक सागर और तेरहवें में पांच भाग ($\frac{५}{१३}$) स्थिति है। दसवें में एक सागर और तेरहवें सात भाग ($\frac{७}{१३}$) स्थिति है। ग्यारहवें में एक सागर और तेरहवें नौ भाग ($\frac{९}{१३}$) स्थिति है। बारहवें में एक सागर और तेरहवें ग्यारह भाग ($\frac{११}{१३}$) स्थिति है। तेरहवें में दो सागर की स्थिति है।

तीसरे चौथे देवलोक में १२ प्रतर हैं। पहले प्रतर में दो सागर और बारहवें पांच भाग ($\frac{५}{१२}$) स्थिति है। दूसरे प्रतर में दो सागर और बारहवें दस भाग ($\frac{१०}{१२}$) स्थिति है। तीसरे प्रतर में तीन सागर और बारहवें तीन भाग ($\frac{३}{१२}$) स्थिति है। चौथे प्रतर में तीन सागर और बारहवें आठ भाग ($\frac{८}{१२}$) स्थिति है। पांचवें

प्रतर में चार सागर और बारहवें एक भाग (१/१२) स्थिति है। छठे प्रतर में चार सागर और बारहवें छह भाग (६/१२) स्थिति है। सातवें प्रतर में चार सागर और बारहवें ग्यारह भाग (११/१२) स्थिति है। आठवें प्रतर में पांच सागर और बारहवें चार भाग (४/१२), स्थिति है। नवमें प्रतर में पांच सागर और बारहवें नौ भाग (९/१२) स्थिति है। दसवें प्रतर में छह सागर और बारहवें दो भाग (२/१२) स्थिति है। ग्यारहवें प्रतर में छह सागर और बारहवें सात भाग (७/१२) स्थिति है। बारहवें प्रतर में सात सागर की स्थिति है।

पांचवें देवलोक में छह प्रतर हैं। पहले प्रतर में साढ़े सात सागर की स्थिति है। दूसरे प्रतर में आठ सागर की स्थिति है। तीसरे प्रतर में साढ़े आठ सागर की स्थिति है। चौथे प्रतर में नौ सागर की स्थिति है। पांचवें प्रतर में साढ़े नौ सागर की स्थिति है। छठे प्रतर में दस सागर की स्थिति है।

छठे देवलोक में पांच प्रतर हैं। पहले प्रतर में दस सागर और पांचवें चार भाग (४/५) स्थिति है। दूसरे प्रतर में ग्यारह सागर और पांचवें तीन भाग (३/५) स्थिति है। तीसरे प्रतर में बारह सागर और पांचवें दो भाग (२/५) स्थिति है। चौथे प्रतर में तेरह सागर और पांचवें एक भाग (१/५) स्थिति है। पांचवें प्रतर में चौदह सागर की स्थिति है।

सातवें देवलोक में चार प्रतर हैं। पहले प्रतर में चौदह सागर और चौथे तीन भाग (३/४) स्थिति है। दूसरे प्रतर में पन्द्रह सागर और चौथे दो भाग (२/४) स्थिति है। तीसरे प्रतर में सोलह सागर

और चौथा एक भाग (१/४) स्थिति है। चौथे प्रतर में सत्तरह सागर की स्थिति है।

आठवें देव लोक में चार प्रतर हैं—पहले प्रतर में सवा सत्तरह सागर की स्थिति है। दूसरे प्रतर में साढ़े सत्तरह सागर की स्थिति है। तीसरे प्रतर में पौने अठारह सागर की स्थिति है। चौथे प्रतर में अठारह सागर की स्थिति है।

नववें दसवें देवलोक में चार प्रतर हैं— पहले प्रतर में साढे अठारह सागर की स्थिति है। दूसरे प्रतर में उन्नीस सागर की स्थिति है। तीसरे प्रतर में साढे उन्नीस सागर की स्थिति है। चौथे प्रतर में बीस सागर की स्थिति है।

ग्यारहवें बारहवें देवलोक में चार प्रतर हैं। पहले प्रतर में २०॥ साढे बीस सागर की स्थिति है। दूसरे प्रतर में २१ सागर की स्थिति है। तीसरे प्रतर में २१॥ साढे इक्कीस सागर की स्थिति है। चौथे प्रतर में २२ बाईस सागर की स्थिति है। ग्रैवेयक में नौ प्रतर हैं— पहले प्रतर में २३ सागर, दूसरे प्रतर में २४ सागर, तीसरे प्रतर में २५ सागर, चौथे प्रतर २६ सागर, पांचवें प्रतर में २७ सागर, छठे प्रतर में २८ सागर, सातवें प्रतर में २९. सागर, आठवें प्रतर में ३० सागर, नववें प्रतर में ३१ सागर की स्थिति है। पांच अनुत्तर विमानों में एक प्रतर है— उसमें जघन्य ३१ सागर की और उत्कृष्ट ३३ सागर की स्थिति है।

अहो भगवान् ! वे विमान कितने लम्बे चौड़े

हे गौतम ! कितनेक विमान तो संख्याता योजन के हैं और कितनेक असंख्याता योजन के हैं।

अहो भगवान् ! कितने विमान संख्याता योजन के हैं और कितने विमान असंख्याता योजन के हैं ? हे गौतम ! सब विमानों के पांच भाग कर लेने चाहिए। उनमें से चार भाग तो असंख्याता योजन के हैं और एक भाग संख्याता योजन के हैं।

॥ तीसरा बोल समाप्त ॥

चौथा बोल

पहले दूसरे देवलोक में २७०० योजन का आंगन (आंगन की मोटाई) है। महल ५०० योजन के ऊंचे हैं। तीसरे चौथे देवलोक में २६०० योजन का आंगन है। महल ६०० योजन के ऊंचे हैं। पांचवें छठे देवलोक में २५०० योजन का आंगन है। महल ७०० योजन के ऊंचे हैं। सातवें आठवें देवलोक में २४०० योजन का आंगन है। महल ८०० योजन के ऊंचे हैं। नवमें दशवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक में २३०० योजन का आंगन है। महल ९०० योजन के ऊंचे हैं। नव ग्रैवेयक में २२०० योजन का आंगन महल १००० योजन के ऊंचे हैं। पांच अनुत्तर विमानों में २१०० योजन का आंगन है महल ११०० योजन के ऊंचे हैं।

॥ चौथा बोल समाप्त ॥

पांचवां बोल

अहो भगवान् ! इन्द्रादिक देवों के भोग में कौन सी देवियां काम आती हैं ? हे गौतम ! जो अपरिगृहीता देवियां पहले देवलोक में रहती हैं, उनमें से एक पल की स्थिति से लेकर सात पल तक की स्थिति वाली देवियां पहले देवलोक के काम में आती हैं। सात पल से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर दस पल तक की स्थिति वाली देवियां तीसरे देवलोक के काम में आती हैं। दस पल से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर बीस पल तक की स्थिति वाली देवियां पांचवें देवलोक के काम में आती हैं। बीस पल (पल्योपम) से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर तीस पल की स्थिति वाली देवियां सातवें देवलोक के काम में आती हैं। तीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर चालीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां नवमें देवलोक के काम में आती हैं। चालीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पचास पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां ग्यारहवें देवलोक के काम में आती हैं।

जो अपरिगृहीता देवियां दूसरे देवलोक में रहती हैं, उनमें से एक पल्योपम भाझेरे की स्थिति से लेकर नव पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां दूसरे देवलोक के काम में आती हैं। नव पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पन्द्रह पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां चौथे देवलोक के काम में आती हैं। पन्द्रह पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर

पचीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां छठे देवलोक के काम में आती हैं। पचीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पैंतीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां आठवें देवलोक के काम में आती हैं। पैंतीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पैंतालीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां दसवें देवलोक के काम में आती हैं। पैंतालीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पचपन पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां बारहवें देवलोक के काम में आती हैं।

अहो भगवान्! देवलोकों में किस प्रकार की परिचारणा (विषय सेवन) होता है। हे गौतम! पहले दूसरे देवलोक में मनुष्य की तरह शरीर (काया) की परिचारणा है। तीसरे चौथे देवलोक में स्पर्श की परिचारणा है। पांचवें छठे देवलोक में रूप की परिचारणा है। सातवें आठवें देवलोक में शब्द की परिचारणा है। नवें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक में मन की परिचारणा है। इससे आगे के देवलोकों में परिचारणा नहीं है।

अहो भगवान्! विमानों का वर्ण कैसा है? हे गौतम! पहले दूसरे देवलोक में पांच वर्ण के विमान हैं। तीसरे चौथे देवलोक में चार वर्ण के विमान हैं। पांचवें छठे देवलोक में तीन वर्ण के विमान हैं। सातवें आठवें देवलोक में दो वर्ण के विमान हैं। नवें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक में तथा नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमानों में एक सफेद वर्ण के विमान हैं।

अहो भगवान्! देवलोकों में कितने [illegible] होते हैं?

हे गौतम ! सब देवलोकों में (बारह देवलोक, नवग्रैवेयक, पांच अनुत्तर विमान) दस बोल मनोज्ञ होते हैं—१. मनोज्ञ, शब्द, २. मनोज्ञ रूप, ३. मनोज्ञ गन्ध, ४. मनोज्ञ रस, ५. मनोज्ञ स्पर्श, ६. मनोज्ञ कान्ति, ७. मनोज्ञ लावण्य (चतुराई) ८. मनोज्ञ गति, ९. मनोज्ञ ज्योति, १०. मनोज्ञ आयुष्य ।

॥ पांचवाँ बोल समाप्त ॥

[illegible] बोल—अहो भगवान् ! नारकी और ज्योतिषी देवों का [illegible] कितना होता है ? हे गौतम नारकी और ज्योतिषी देवता अवधिज्ञान से ऊपर और नीचा थोड़ा जानते देखते हैं, तिर्च्छा ज्यादा जानते देखते हैं। भवनपति और वाणव्यन्तर देव ऊँचा अधिक जानते देखते हैं, नीचा और तिर्च्छा थोड़ा जानते देखते हैं। वैमानिक देव नीचा अधिक जानते देखते हैं, ऊँचा और तिर्च्छा थोड़ा जानते देखते हैं।

अहो भगवान् ! नारकी और देवों के अवधिज्ञान का आकार कैसा है ? हे गौतम ! नारकी जीवों का अवधिज्ञान तिपाई के आकार है। भवनपति देवों का अवधिज्ञान पल्य (छबड़ा) के आकार है। वाणव्यन्तर देवों का अवधिज्ञान ढोल के आकार है। ज्योतिषी देवों का अवधिज्ञान झालर के आकार है। बारह देवलोकों के देवों का अवधिज्ञान मृदंग के आकार है। नव-ग्रैवेयक के देवों का अवधिज्ञान फूलों की चंगेरी (टोकरी) के आकार है। अनुत्तर विमान के देवों का अवधिज्ञान कञ्चुक के

आकार है। मनुष्य और तिर्यञ्चों के अवधिज्ञान का आकार विविध प्रकार का है।

॥ छठा बोल समाप्त ॥

अहो भगवान् ! देवलोकों का आकार कैसा है ? हे गौतम पहले दूसरे तीसरे चौथे देवलोक का आकार अर्द्ध चन्द्रमा के समान है। पांचवें छठे सातवें आठवें देवलोक का आकार पूर्ण चन्द्रमा के समान है। नववें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें देवलोक का आकार अर्द्ध चन्द्रमा के आकार है। नवग्रैवेयक का आकार घेड़ा (एक घड़े के ऊपर दूसरा घड़ा) के समान है। चार अनुत्तर विमानों का आकार सिंघाड़े के समान है। सर्वार्थसिद्ध विमान का आकार पूर्ण चन्द्रमा के समान है। सर्वार्थसिद्ध विमान से बारह योजन ऊपर सिद्धशिला है। इसका आकार उल्टे छत्र के समान है। यह पैंतालीस लाख योजन की लम्बी चौड़ी है। इसकी परिधि एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनचास योजन झाझेरी है। यह मध्य भाग में आठ योजन मोटी है। और अन्त में मक्खी के पंख से भी पतली है।

अहो भगवान् ! सिद्धशिला का वर्ण कैसा है ? हे गौतम ! सिद्धशिला का वर्ण सफेद है। जैसे गोक्षीर (गाय का दूध) का फेन, पानी का कण, मुचकुन्द का फूल, चांदी का पाट और शंख सफेद और निर्मल होता है, इससे भी अनन्तगुण सफेद एवं निर्मल है। इस सिद्धशिला के ऊपर अवगाहना में अर्थात् एक

कोस के छठे भाग में, लोक के मस्तक पर सिद्ध भगवान् विराजमान हैं।

अहो भगवान्! सिद्ध भगवान् की अवगाहना कितनी है? हे गौतम! सिद्ध भगवान् की जघन्य अवगाहना एक हाथ और आठ अङ्गुल की है। मध्यम अवगाहना चार हाथ और सोलह अंगुल की है। उत्कृष्ट अवगाहना ३३३ धनुष और बत्तीस अंगुल की है।

अहो भगवान्! सिद्ध भगवान् कितने गुणों से विराजमान हैं? हे गौतम! इकतीस गुणों से विराजमान हैं। उन्होंने पांच प्रकार के ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय किया है। नव प्रकार के दर्शनावरणी कर्म का क्षय किया है। दो प्रकार के वेदनीय कर्म का, दो प्रकार के मोहनीय कर्म का, चार प्रकार के आयु कर्म का, दो प्रकार के नाम कर्म का, दो प्रकार के गोत्र कर्म का और पांच प्रकार के अन्तराय कर्म का क्षय किया है। इस प्रकार आठ कर्मों का सर्वथा क्षय करने से उनमें इकतीस गुण प्रकट हुए हैं। वे जन्म जरा मरण भय रोग शोक रहित हैं। ऐसे गुणों से युक्त सिद्ध भगवान् लोक के अग्रभाग पर विराजमान हैं। ऐसे सिद्ध भगवान् को मैं बारम्बार वन्दना नमस्कार करता हूँ।

सेवं भंते! सेवं भंते!!

॥ इति भवन द्वार का थोकड़ा सम्पूर्ण ॥

समा द्वार का थोकड़ा

प्रारंभ

मङ्गलाचरण

सिद्धाणं बुद्धाणं, पारगयाणं परंपरगयाणं,
लोअग्गमुवगयाणं, नमो सया सव्वसिद्धाणं ॥ १ ॥
जो देवाण वि देवो, जं देवा पंजली नमंसंति ।
तं देव देव महियं, सिरसा वंदे महावीरं ॥ २ ॥
इक्को वि नमुक्कारो, जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स ।
संसार सायराओ, तारेइ नरं व नारिं वा ॥ ३ ॥

भावार्थ— सिद्ध (कृतार्थ), बुद्ध, संसार के पार पहुंचे हुए, लोकाग्र स्थित, परम्परागत सभी सिद्ध भगवान् को मेरा सदा नमस्कार हो ॥ १ ॥

जो देवों का भी देव है अर्थात् देवाधि देव है, जिसे देवता अंजलि बांध कर अर्थात् हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हैं, देवेन्द्रों से पूजित उन भगवान् महावीर स्वामी को मैं नतमस्तक होकर वन्दना करता हूं ॥ २ ॥

जिनवरों में वृषभरूप भगवान् वर्द्धमान स्वामी को भाव पूर्वक किया गया एक भी नमस्कार संसार सागर से नरों और नारियों को तिरा देता है ॥ ३ ॥

सभा-द्वार का थोकड़ा

बहुत से शास्त्रों में सभाद्वार का वर्णन पृथक् पृथक् प्रकी रूप से चलता है सो यहां से संग्रह कर यह सभाद्वार का थोका लिखा जाता है—

सभाद्वार के २९ द्वार हैं— वे ये हैं— १ नाम द्वार २ चिन्ह द्वार, ३ गिनती द्वार (गणना द्वार), ४ योजन द्वार ५ भाग द्वार, ६ सामानिक द्वार, ७ आत्म रक्षक द्वार ८ त्रायस्त्रिंशक द्वार, ९ लोकपाल द्वार, १० अग्रमहिषी द्वार ११ आभ्यन्तर परिषद् द्वार, १२ मध्यम परिषद् द्वार, १३ बाह परिषद् द्वार, १४ अनीका द्वार, १५ ज्ञान द्वार, १६ दृष्टान्त द्वार (सेठ के पुत्र का दृष्टान्त द्वार), १७ उपमा द्वार (देवलोकों के सुखों से उपमा द्वार), १८ मुनि के सुखों का उपमा द्वार, १९ परिचारणा द्वार, २० भोग स्थिति द्वार, २१ आंगन द्वार, २२ पुत्र-पुत्री द्वार, २३ उपजन द्वार, २४ श्वासोच्छ्‌वास द्वार, २५ आहार द्वार, २६ अवगाहना द्वार, २७ स्थिति द्वार, २८ अंतर द्वार, २९ पूंजी द्वार।

१ नाम द्वार— अहो भगवान् ! देव कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! चार प्रकार के हैं— भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक।

अहो भगवान् ! भवनपति देव कितने प्रकार हैं ? हे गौतम ! दस प्रकार के हैं— असुर कुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत् कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, पवन कुमार, स्तनित कुमार।

अहो भगवान् ! भवनपति देवों के कितने इन्द्र हैं ? हे गौतम ! बीस इन्द्र हैं—१ चमरेन्द्रजी, २ बलीन्द्रजी, ३ धरणेन्द्र जी, ४ भूतेन्द्रजी, ५ वेणुदेव, ६ वेणुदाली, ७ हरिकान्त, ८ हरिशिख, ९ अग्निशिख, १० अग्निमाणव, ११ पूर्णेन्द्र, १२ विशिष्टेन्द्र, १३ जलकान्त, १४ जल प्रभ, १५ अमित गति, १६ अमित वाहन, १७ वेलम्ब, १८ प्रभंजन, १९ घोष, २० महाघोष ※।

अहो भगवान् ! वाणव्यन्तर देवों के कितने इन्द्र हैं ? हे गौतम ! बत्तीस इन्द्र हैं—१. काल, २. महाकाल, ३. सुरूप, ४. प्रतिरूप, ५. पूर्णभद्र, ६. मणिभद्र, ७. भीम, ८. महाभीम, ९. किन्नर, १०. किम्पुरुष, ११. सत्पुरुष, १२. महापुरुष, १३. अति-

---

※ इनमें से विषम संख्या वाले (पहला, तीसरा, पांचवां आदि) दक्षिण दिशा के इन्द्र हैं और समसंख्या वाले (दूसरा, चौथा, छट्ठा आदि) उत्तर दिशा के इन्द्र हैं।

काय, १४. महाकाय, १५. गीतरति, १६. गीतयश, १७. सन्निहि
१८. सामान्य, १६. धाता, २०. विधाता, २१. ऋषि, २२. ऋषि
पाल, २३. ईश्वर, २४. महेश्वर, २५. सुवत्स, २६. विशाल
२७. हास्य, २८. हास्यरति, २६. श्वेत, ३०. महा श्वेत ३१. पतंग
३२. पतगपति।

अहो भगवान् ! ज्योतिषी देवों के कितने इन्द्र हैं ? हे गौतम ! दो इन्द्र हैं—चन्द्र और सूर्य।

अहो भगवन् ! वैमानिक देवों के कितने इन्द्र हैं ? हे गौतम ! दस इन्द्र हैं—१. सौधर्मेन्द्र (शक्रेन्द्र), २. ईशानेन्द्र, ३. सनत्कुमारेन्द्र, ४. माहेन्द्र, ५. ब्रह्मलोकेन्द्र, ६. लान्तकेन्द्र, ७. शुक्रेन्द्र, ८. सहस्रारेन्द्र, ६. प्राणतेन्द्र, १०. अच्युतेन्द्र।

२. चिन्ह द्वार—अहो भगवान् ! दस भवनपति देवों के क्या चिन्ह हैं ? हे गौतम ! अमुरकुमारों के चूड़ामणि (राखड़ी) का चिन्ह है। २. नागकुमार देवों के नाग (सर्प) का चिन्ह है। ३. सुपर्णकुमार देवों के गरुड़ का चिन्ह है। ४. विद्युत्कुमार देवों के वज्र का चिन्ह है। ५. अग्निकुमार देवों के कलश का चिन्ह है। ६. द्वीपकुमार देवों के सिंह का चिन्ह है। ७. उदधिकुमार देवों के अश्व (घोड़ा) का चिन्ह है। ८. दिशाकुमार देवों के गज (हाथी) का चिन्ह है। ६. पवनकुमार देवों के मगरमच्छ का चिन्ह है। १०. स्तनित कुमार देवों के वर्द्धमान (स्वस्तिक) का चिन्ह है।

अहो भगवान् ! वाणव्यन्तर देवों के क्या चिन्ह हैं ? हे

गौतम ! वाणव्यन्तर देवों के इस प्रकार चिन्ह हैं—१. पिशाच जाति के देवों के कदम्ब वृक्ष का चिन्ह है। २. भूत जाति के देवों के सुलस वृक्ष अथवा शालि का चिन्ह है। ३. यक्ष जाति के देवों के वट वृक्ष का चिन्ह है। राक्षस जाति के देवों के स्कन्दक वृक्ष तथा पांडलो वृक्ष का चिन्ह होता है। ५. किन्नर जाति के देवों के अशोक वृक्ष का चिन्ह है। ६. किम्पुरुष जाति के देवों के चम्पक वृक्ष का चिन्ह है। ७. महोरग जाति के देवों के नाग वृक्ष का चिन्ह है। ८. गन्धर्व जाति के देवों के टिम्बरु वृक्ष का चिन्ह है। इसी प्रकार आणपन्नें पाणपन्नें आदि आठ जाति के देवों के अनुक्रम से ये ही चिन्ह होते हैं।

अहो भगवान् ! ज्योतिषी देवों के क्या चिन्ह हैं ? हे गौतम ! चन्द्रमा के मृग का चिन्ह है। सूर्य के सप्त मुख घोड़े का चिन्ह है। मंगल के तारा के गेंडे का चिन्ह है। बुध के तारा के सिंह का चिन्ह है। बृहस्पति के तारा के गज (हाथी) का चिन्ह है। शुक्र तारा के अश्व (घोड़ा) का चिन्ह है। शनैश्चर तारा के महिष (भैंसा) का चिन्ह है।

अहो भगवान् ! वैमानिक देवों के क्या चिन्ह है ? हे गौतम ! पहले देवलोक के देवों के मृग का चिन्ह है। दूसरे देवलोक के देवों के महिष (भैंसा) का चिन्ह है। तीसरे देवलोक के देवों के शूकर (सूअर) का चिन्ह है। चौथे देवलोक के देवों के सिंह का चिन्ह है। पांचवें देवलोक के देवों के अज (बकरा) का चिन्ह है। छठे देवलोक के देवों के मेंडक का चिन्ह है। सातवें देवलोक

के देवों के अश्व (घोड़ा) का चिन्ह है। आठवें देवलोक के देवों के गज (हाथी) का चिन्ह है। नवमें-दसवें देवलोक के देवों के सर्प का चिन्ह है। ग्यारहवें वारहवें देवलोक के देवों के वृषभ (वल) का चिन्ह है।

३. गणना द्वार—अहो भगवान्! भवनपति देवों के कितने भवन हैं? हे गौतम! ७ करोड़ ७२ लाख भवन हैं। ४ करोड़ ६ लाख भवन दक्षिण दिशा में हैं और ३ करोड़ ६६ लाख भवन उत्तर दिशा में हैं।

अब हरेक भवनपति देवों के भवनों की संख्या बतलाई जाती है—दक्षिण दिशा में असुरकुमारों के ३४ लाख भवन हैं। नागकुमारों के ४४ लाख भवन हैं। सुवर्ण कुमारों के ३८ लाख भवन हैं। विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार और स्तनितकुमार इन छह के चालीस चालीस लाख भवन हैं। पवनकुमार के ५० लाख भवन हैं। ये सब मिला कर दक्षिण दिशा में चार करोड़ छह लाख भवन हुए। उत्तर दिशा में असुरकुमारों के ३० लाख भवन हैं। नागकुमारों के ४० लाख भवन हैं। सुवर्णकुमारों के ३४ लाख भवन हैं। विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, और स्तनितकुमार इन छह के छत्तीस छत्तीस लाख भवन हैं। पवनकुमारों के ४६ लाख भवन हैं। ये सब मिला कर उत्तर दिशा में तीन करोड़ छासठ लाख भवन हैं। कुल मिला कर ७ करोड़ ७२ लाख भवन हैं।

अहो भगवान्! वाणव्यन्तर देवों के कितने नगर हैं? हे

गौतम ! असंख्याता नगर हैं।

अहो भगवान् ! ज्योतिषी देवों के कितने विमान हैं ? हे गौतम ! असंख्याता विमान हैं।

अहो भगवान् ! वैमानिक देवों के कितने विमान हैं ? हे गौतम ! ८४९७०२३ विमान हैं। पहले देवलोक में ३२ लाख विमान हैं। दूसरे देवलोक में २८ लाख विमान हैं। तीसरे देवलोक में १२ लाख विमान हैं। चौथे देवलोक में ८ लाख विमान हैं। पांचवें देवलोक में चार लाख विमान हैं। छठे देवलोक में पचास हजार विमान हैं। सातवें देवलोक में चालीस हजार विमान हैं। आठवें देवलोक में छह हजार विमान हैं। नवें दसवें देवलोक में चार सौ विमान हैं। ग्यारहवें बारहवें देवलोक में तीन सौ विमान हैं। नवग्रैवेयक में तीन त्रिक हैं— पहली त्रिक में १११ विमान हैं। दूसरी त्रिक में १०७ विमान हैं। तीसरी त्रिक में १०० विमान हैं। पांच अनुत्तर विमानों में पांच विमान हैं। ये कुल मिला कर ८४९७०२३ विमान हैं।

४. योजन द्वार—अहो भगवान् ! भवनपति देवों के भवन कितने लम्बे चौड़े होते हैं ? हे गौतम ! कितनेक संख्याता योजन के हैं और कितनेक असंख्याता योजन के हैं। जघन्य तो जम्बूद्वीप प्रमाण हैं, मध्यम अढ़ाई द्वीप प्रमाण हैं और उत्कृष्ट संख्याता असंख्याता योजन के हैं। कल्पना कीजिये जैसे कोई चपल एवं शीघ्र गति वाला देव ८५०७४० योजन का एक डग भरे—एक कदम रखे, ऐसी तेज गति से वह छह मास तक चले तो संख्याता

योजन के भवनों का पार आ सकता है किन्तु असंख्याता योजन वाले भवनों का पार नहीं आ सकता है।

अहो भगवान्! वाणव्यन्तर देवों के नगर कितने लम्बे चौड़े हैं? हे गौतम। जघन्य तो भरत क्षेत्र प्रमाण हैं, मध्यम महाविदेह प्रमाण हैं और उत्कृष्ट जम्बूद्वीप प्रमाण हैं।

अहो भगवान्! ज्योतिषी देवों के विमान कितने लम्बे चौड़े हैं? हे गौतम! चन्द्रमा का विमान एक योजन के इकसठवें छप्पन भाग ($\frac{५६}{६१}$) प्रमाण लम्बा चौड़ा है। और अठाईस भाग ($\frac{२८}{६१}$) प्रमाण मोटा (जाडा) है।

सूर्य का विमान एक योजन के इकसठवें अड़तालीस भाग ($\frac{४८}{६१}$) प्रमाण लम्बा चौड़ा है और चौबीस भाग ($\frac{२४}{६१}$) प्रमाण मोटा है।

ग्रह का विमान दो गाऊ (चार कोस) का लम्बा चौड़ा है और एक गाऊ का मोटा है।

नक्षत्र का विमान एक गाऊ का लम्बा चौड़ा है और आधे गाऊ का मोटा है।

तारा का विमान आधे गाऊ का लम्बा चौड़ा है और पाव गाऊ का मोटा है।

अहो भगवान्! वैमानिक देवों के विमान कितने लम्बे चौड़े हैं? हे गौतम! वैमानिक देवों के विमानों की लम्बाई चौड़ाई भवनपतियों के भवनों के समान कह देनी चाहिए।

५. भाग द्वार—अहो भगवान् ! भवनपतियों के भवन और वैमानिक देवों के विमानों में संख्याता योजन के कितने हैं और असंख्याता योजन के कितने हैं ? हे गौतम ! सब भवनों के और विमानों के पांच पांच विभाग किये जांय तो उनमें से एक एक विभाग के भवन और विमान संख्याता योजन के हैं और बाकी चार चार विभाग के भवन और विमान असंख्याता योजन के हैं।

६. सामानिक द्वार—अहो भगवान् ! भवनपति इन्द्रों के कितने सामानिक हैं ? हे गौतम ! भवनपतियों के बीस इन्द्र हैं। उनमें से चमरेन्द्रजी के ६४ हजार सामानिक देव हैं। बलीन्द्रजी के ६० हजार देव हैं। बाकी १८ इन्द्रों के छह छह हजार सामानिक देव हैं।

अहो भगवान् ! वाणव्यन्तरों के इन्द्रों के कितने सामानिक देव है ? हे गौतम ! वाणव्यन्तरों के ३२ इन्द्र हैं। उनमें हरेक के चार चार हजार सामानिक देव हैं।

अहो भगवान् ! ज्योतिषियों के इन्द्रों के कितने सामानिक देव हैं ? हे गौतम ! ज्योतिषियों के दो इन्द्र हैं—चन्द्रमा और सूर्य। इन दोनों के चार चार हजार सामानिक देव हैं।

अहो भगवान् ! वैमानिक इन्द्रों के कितने सामानिक देव हैं ? हे गौतम ! पहले देवलोक के इन्द्र के ८४ हजार, दूसरे के ८० हजार, तीसरे के ७२ हजार, चौथे के ७० हजार, पांचवें के ६० हजार, छठे के ५० हजार, सातवें के ४० हजार, आठवें के ३० हजार, नवें दसवें देवलोक के इन्द्र के २० हजार और ग्यारहवें

ग्यारहवें देवलोक के इन्द्र के दस हजार सामानिक देव हैं।

७. आत्मरक्षक द्वार—अहो भगवान्! इन चारों जाति के देवों के इन्द्रों के कितने कितने आत्मरक्षक देव हैं? हे गौतम! सब इन्द्रों के सामानिक देवों से चौगुने आत्मरक्षक देव कह देने चाहिए।

८. त्रायस्त्रिंशक द्वार—अहो भगवान्! इन चार जाति के देवों के इन्द्रों के कितने कितने त्रायस्त्रिंशक देव हैं? हे गौतम! भवनपति और वैमानिक देवों के हरेक इन्द्र के तेतीस तेतीस त्रायस्त्रिंशक देव हैं। वाणव्यन्तर और ज्योतिषी देवों के त्रायस्त्रिंशक देव नहीं होते हैं।

९. लोकपाल द्वार—अहो भगवान्! इन चार जाति के देवों के इन्द्रों के कितने कितने लोकपाल हैं? हे गौतम! भवनपति और वैमानिक देवों के हरेक इन्द्र के चार चार लोकपाल हैं। वाणव्यन्तर और ज्योतिषी देवों के इन्द्रों के लोकपाल नहीं होते हैं।

१०. अग्रमहिषी द्वार—अहो भगवान्! इन चार जाति के देवों के इन्द्रों के कितनी कितनी अग्रमहिषियां हैं और उनका कितना कितना परिवार है? हे गौतम! चमरेन्द्रजी और बलीन्द्रजी के पांच पांच अग्रमहिषियां हैं—काली, राजी, रजनी, विद्यु-

अग्रमहिषियां हैं। एक एक अग्रमहिषी के छह छह हजार देवियों का परिवार है। यदि एक एक देवी वैक्रिय रूप बनावे तो छह छह हजार वैक्रिय रूप बना सकती है। इन्द्र जितनी देवियां होती हैं, उतने ही वैक्रिय रूप बना सकते हैं।

वाणव्यन्तर देवों के ३२ इन्द्र हैं। एक एक इन्द्र के चार-चार अग्रमहिषियां हैं। एक एक अग्रमहिषी के एक एक हजार देवियों का परिवार है। एक एक देवी यदि वैक्रिय रूप बनावे तो एक एक हजार रूप वैक्रिय बना सकती है। इन्द्र जितनी देवियां होती हैं, उतने ही वैक्रिय रूप बना सकते हैं।

ज्योतिषी देवों के दो इन्द्र हैं। एक एक इन्द्र के चार चार अग्रमहिषियां हैं। एक एक अग्रमहिषी के चार चार हजार देवियों का परिवार है। यदि वैक्रिय रूप बनावे तो एक एक देवी चार चार हजार रूप वैक्रिय बना सकती है। इन्द्र जितनी देवियां होती हैं, उतने ही वैक्रिय रूप बना सकते हैं।

पहले देवलोक के इन्द्र शक्रेन्द्रजी के और दूसरे देवलोक के इन्द्र ईशानेन्द्र जी के आठ आठ अग्रमहिषियां हैं। एक एक अग्रमहिषी के सोलह सोलह हजार देवियों का परिवार है। एक एक देवी सोलह सोलह हजार रूप वैक्रिय बना सकती है। बाकी ऊपर के इन्द्रों के अग्रमहिषियां और देवियां नहीं होती हैं।

११. आभ्यन्तर परिषद् द्वार— १२ मध्यम परिषद् द्वार, १३ बाह्य परिषद् द्वार— अहो भगवान् ! परिषद् (परखदा) कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! तीन प्रकार की है— आभ्यन्तर

परिषद्, मध्यम परिषद् और बाह्य परिषद्। आभ्यन्तर परिषद् में खास सलाह विचार किया जाता। इसके देव आदर से, बुलाने पर आते हैं और भेजने पर वापिस जाते हैं। मध्यम (बीच की) परिषद् में सामान्य सलाह विचार किया जाता है। ये देव बुलाने पर आते हैं किन्तु बिना भेजे ही वापिस चले जाते हैं। बाह्य (बाहर की) परिषद् के देवों को हुक्म (आज्ञा) दिया जाता है कि अमुक कार्य करो। ये देव बिना बुलाये ही आते हैं और बिना भेजे जाते हैं अर्थात् इनको हाजिर होना ही पड़ता है।

चमरेन्द्रजी के आभ्यन्तर (अन्दर की) परिषद् में २४ हजार देव हैं। मध्यम परिषद् में २८ हजार देव हैं। बाह्य परिषद् में ३२ हजार देव हैं। बलीन्द्रजी के आभ्यन्तर परिषद् में २० हजार देव हैं, मध्यम परिषद् में २४ हजार देव हैं और बाह्य परिषद् में २८ हजार देव हैं।

दक्षिण दिशा के नौ इन्द्रों के आभ्यन्तर परिषद् में साठ साठ हजार देव हैं। मध्यम परिषद् में ७०-७० हजार देव हैं और बाह्य परिषद् में ८०-८० हजार देव हैं।

उत्तर दिशा के नौ इन्द्रों के आभ्यन्तर परिषद् में पचास पचास हजार देव हैं। मध्यम परिषद् में साठ साठ हजार देव हैं और बाह्य परिषद् में ७०-७० हजार देव हैं।

वाणव्यन्तर और ज्योतिषी इन्द्रों के हरेक के आभ्यन्तर परिषद् में आठ आठ हजार देव हैं, मध्यम परिषद् में दस दस हजार देव हैं और बाह्य परिषद् में बारह बारह हजार देव हैं।

शक्रेन्द्रजी की आभ्यन्तर परिषद् में १२००० देव हैं, मध्यम परिषद् में १४००० देव हैं और बाह्य परिषद् में १६००० देव हैं। ईशानेन्द्रजी की आभ्यन्तर परिषद् में १०००० देव हैं और मध्यम परिषद् में १२००० देव हैं, बाह्य परिषद् में १४००० देव हैं। सनत्कुमारेन्द्र (तीसरे देवलोक के इन्द्र) की आभ्यन्तर परिषद् में ८००० देव हैं, मध्यम परिषद् में १०००० देव हैं और बाह्य .रिषद् में १२००० देव हैं। चौथे देवलोक के इन्द्र माहेन्द्र की आभ्यन्तर परिषद् में ६००० देव हैं मध्यम परिषद् में ८००० देव हैं और बाह्य परिषद् में १०००० देव हैं। पांचवें देवलोक के इन्द्र ब्रह्म लोकेन्द्र की आभ्यन्तर परिषद् में ४००० देव हैं, मध्यम परिषद् में ६००० देव हैं और बाह्य परिषद् में ८००० देव हैं। छठे देवलोक के इन्द्र लान्तकेन्द्र की आभ्यन्तर परिषद् में २००० देव हैं। मध्यम परिषद् में ४००० देव हैं और बाह्य परिषद् में ६००० देव हैं। सातवें देवलोक के इन्द्र शुक्रेन्द्रजी की आभ्यन्तर परिषद् में १००० देव हैं, मध्यम परिषद् में २००० देव हैं और [illegible]ह्य परिषद् में ४००० देव हैं। आठवें देवलोक के इन्द्र सहस्रारेन्द्र की आभ्यन्तर परिषद् में ५०० देव हैं, मध्यम परिषद् में १००० देव हैं और बाह्य परिषद् में २००० देव हैं। नववें दसवें देवलोक के इन्द्र प्राणतेन्द्र की आभ्यन्तर परिषद् में २५० देव हैं, मध्यम परिषद् में ५०० देव हैं और बाह्य परिषद् में १००० देव हैं। ग्यारहवें बारहवें देवलोक के इन्द्र अच्युतेन्द्र की आभ्यन्तर परिषद् में १२५ देव हैं, मध्यम परिषद् में २५० देव और बाह्य परिषद् में ५०० देव हैं।

नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमानों में परिषद् नहीं हैं। वहां सब अहमिन्द्र हैं।

१४. अनीका द्वार—अहो भगवान्! भवनपति देवों के बीस इन्द्रों के कितने प्रकार की अनीका (सेना) हैं? हे गौतम! हरेक इन्द्र के सात सात प्रकार की अनीका (सेना) हैं—१. गजानीक (हाथियों की सेना), २. हयानीक (घोड़ों की सेना), रथानीक (रथों की सेना), ४. पदात्यानीक (पैदल सेना), ५. महिषानीक (भैंसों की सेना), ६. गन्धर्वानीक (गन्धर्व देवों की सेना), ७. नाट्यानीक (नाटक करने वालों की सेना)।

चमरेन्द्रजी के एक एक अनीका (सेना) में ८१२८००० देवता हैं। बलीन्द्रजी के एक एक अनीका में ७६२०००० देव हैं। बाकी १८ इन्द्रों के एक एक अनीका (सेना) में ३५५६००० देव हैं। वाणव्यन्तर और ज्योतिषी* देवों के इन्द्रों के भी सात सात अनीका हैं। हरेक अनीका में ५०८००० देव हैं।

* वैमानिक देवों के इन्द्रों के भी सात सात अनीका हैं। पहले देवलोक के इन्द्र के हरेक अनीका में एक करोड़ छह लाख अड़सठ हजार देव हैं। दूसरे देवलोक के इन्द्र के हरेक अनीका में एक करोड़ एक लाख साठ हजार देव हैं। तीसरे देवलोक के इन्द्र के हरेक अनीका में ९१४४००० देव हैं। चौथे देवलोक के इन्द्र के ८८९०००० देव हैं। पांचवें देवलोक के इन्द्र के हरेक

* ज्योतिषी और वैमानिक देवों में महिषानीक नहीं होती है किन्तु वृषभानीक होती है।

अनीका में ७६२०००० देव हैं। छठे देवलोक के इन्द्र के हरेक अनीका में ६३५०००० देव हैं। सातवें देवलोक के इन्द्र के हरेक अनीका में ५०८०००० देव हैं। आठवें देवलोक के इन्द्र के हरेक अनीका में ३८१०००० देव हैं। नवमें दसवें देवलोक के इन्द्र के हरेक अनीका में २५४०००० देव हैं। ग्यारहवें बारहवें देवलोक के इन्द्र के हरेक अनीका में १२७०००० देव हैं+।

नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमानों में अनीका नहीं होती हैं। वहां सब अहमिन्द्र हैं।

१५—ज्ञान द्वार—अहो भगवान्! भवनपति देवों का अवधिज्ञान कितना होता है? हे गौतम! असुरकुमार जाति के देव नीचा देखें तो तीसरी नरक देखते हैं। ऊँचा देखें तो पहला देवलोक देखते हैं। तिर्च्छा देखें तो पल्योपम की स्थिति वाले देव संख्याता द्वीप सागर देखते हैं और सागरोपम की स्थिति वाले देव असंख्याता द्वीप समुद्र देखते हैं। बाकी नागकुमार आदि नवनिकाय के देव नीचा देखें तो पहली नरक, ऊँचा देखें तो पहला देवलोक और तिर्च्छा देखें तो संख्याता द्वीप समुद्र देखते हैं।

+ जिस इन्द्र के जितने सामानिक देव हैं उनको १२७ से गुणा करने पर जितनी संख्या आवे उतने ही हरेक अनीका के देव होते हैं किन्तु इतनी विशेषता है कि भवनपति के १८ इन्द्रों के २८००० को १२७ से गुणा करना चाहिए। गुणा करने से जितनी संख्या आवे उतने ही देव हरेक अनीका में होते हैं।

वाणव्यन्तर जाति के देव नीचा देखें तो पहली नरक, ऊँचा देखें तो पंडक वन और तिर्च्छा देखें तो संख्याता द्वीप समुद्र देखते हैं।

ज्योतिषी देव नीचा देखें तो पाताल कलश, ऊँचा देखें तो अपनी ध्वजा (पताका) और तिर्च्छा देखें तो संख्याता द्वीप समुद्र देखते हैं।

वैमानिक देवों में पहले दूसरे देवलोक के देव नीचा देखें तो पहली नरक, ऊँचा देखें तो अपनी ध्वजा (पताका) और तिर्च्छा देखें तो पल्योपम की स्थिति वाले देव संख्याता द्वीप समुद्र और सागरोपम की स्थिति वाले देव असंख्याता द्वीप समुद्र देखते हैं। तीसरे चौथे देवलोक के देव नीचा देखें तो दूसरी नरक, ऊँचा देखें तो अपनी ध्वजा (पताका) और तिर्च्छा देखें तो असंख्याता द्वीप समुद्र देखते हैं। पांचवें छठे देवलोक के देव नीचे देखें तो तीसरी नरक, ऊँचा देखें तो अपनी ध्वजा (पताका) और तिर्च्छा देखें तो असंख्याता द्वीप समुद्र देखते हैं। सातवें आठवें देवलोक के देव नीचा देखें तो चौथी नरक, ऊपर अपनी ध्वजा (पताका) और तिर्च्छा असंख्याता द्वीप समुद्र देखते हैं। नवमें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक के देव नीचा देखें तो पांचवीं नरक, ऊपर अपनी ध्वजा (पताका) और तिर्च्छा असंख्याता द्वीप समुद्र देखते हैं। नवग्रैवेयक की तीन त्रिक हैं उनमें से पहली दूसरी त्रिक के देव नीचा देखें तो छठी नरक, ऊँचा अपनी ध्वजा (पताका) और तिर्च्छा असंख्याता द्वीप समुद्र देखते हैं। तीसरी त्रिक के

देव नीचा देखें तो सातवीं नरक, ऊपर अपनी ध्वजा (पताका)
और तिर्च्छा असंख्याता द्वीप सागर देखते हैं। पांच अनुत्त
विमान के देव किंचित्, ऊणी सम्पूर्ण लोकनाल को देखते हैं।

१६. दृष्टान्त द्वार (सेठ के पुत्र का दृष्टान्त) और १७. उपमा
द्वार (देवलोकों के सुखों से उपमा)—जैसे कल्पना कीजिये कि
एक इभ्य ॐ सेठ था। उसके एक इकलौता लड़का था। इसलिए
वह बहुत प्रिय था। जब वह यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ तब
इभ्य सेठों की बत्तीस कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया
गया। ये कन्याएँ बहुत ही विनयवान्, गुणवान् और रूपवान्
थीं। सेठ का लड़का उन्हें छोड़ कर धन कमाने के लिए परदेश
चला गया। वहां उसने मन इच्छित धन कमाया और सोलह वर्ष
के बाद वापिस अपने घर लौटा। माता पिता ने उसको अति
-यार किया और प्रेम के साथ भोजन करवाया। उसकी स्त्रियों ने भी
स्नानादि करके बढ़िया बढ़िया वस्त्र आभूषणादि पहने। वह सेठ
का पुत्र रत्नजड़ित महल के अन्दर पलंग पर उन स्त्रियों के साथ
जो सुख मानता है उससे वाणव्यन्तर देवों का सुख अनन्त गुणा
है। नवनिकाय का सुख अनन्त गुणा उससे असुर कुमार देवता
का सुख अनन्त गुणा उनसे ग्रह नक्षत्र तारा का सुख अनन्त गुणा
। उनसे चन्द्रमा सूर्य का सुख अनन्त गुणा है। उनसे पहले
दूसरे देवलोक के देवों का सुख अनन्त गुणा है। उनसे तीसरे चौथे

ॐ जिसके पास इतना धन हो कि उसका ढेर करने पर अम्बारी
सहित हाथी ढक जाय उसे इभ्य सेठ कहते हैं।

देवलोक के देवों का सुख अनन्त गुणा है। उससे पांचवें छठे देवलोक के देवों का सुख अनन्त गुणा है। उससे सातवें आठवें देवलोक के देवों का सुख अनन्त गुणा है। उससे नवयें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक के देवों का सुख अनन्त गुणा है। उससे नवग्रैवेयक के देवों का सुख अनन्त गुणा है। उससे पांच अनुत्तर विमान के देवों का सुख अनन्त गुणा है।

१८. मुनि के सुखों की उपमा द्वार— एक महीने की प्रव्रज्या वाला साधु वाणव्यन्तर देवों के सुखों को उल्लंघन कर जाता है अर्थात् एक महीने की प्रव्रज्या वाले मुनि का सुख वाणव्यन्तर देवों से भी बढ़ कर है। दो महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु नागकुमार आदि नव निकाय के देवों के सुखों को उल्लंघन कर जाता है। तीन महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु असुरकुमार के सुखों को उल्लंघन कर जाता है। चार महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु ग्रह नक्षत्र तारा इन ज्योतिषी देवों के सुखों को उल्लंघन कर जाता है। पांच महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु चन्द्रमा सूर्य के सुखों को उल्लंघन कर जाता है। छह महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु पहले दूसरे देवलोक के सुखों को उल्लंघन कर जाता है। सात महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु तीसरे चौथे देवलोक के सुखों को उल्लंघन कर जाता है। आठ महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु पांचवें छठे देवलोक के सुखों को उल्लंघन कर जाता है। नौ महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु सातवें आठवें देवलोक के सुखों को उल्लंघन कर जाता है। दस महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु नवमें दसवें ग्यारहवें बारहवें

देवलोक के सुखों को उल्लंघन कर जाता है। ग्यारहवें महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु नवग्रैवेयक के सुखों को उल्लघन कर जाता है। बारह महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु पांच अनुत्तर विमान के सुखों को उल्लंघन कर जाता है।

१६. परिचारणा द्वार (विषय सेवन द्वार)— अहो भगवान्! देवों में किस प्रकार की परिचारणा होती है? हे गौतम! भवनपति, वाणव्यन्तर ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक के देव *शरीर से परिचारणा करते हैं* अर्थात् *मनुष्यों की* तरह काम भोग भोगते हैं। तीसरे देवलोक से आगे के वैमानिक देव मनुष्यों की तरह काम भोग नहीं भोगते हैं, वे भिन्न भिन्न प्रकार से विषय—सुख का अनुभव करते हैं। तीसरे और चौथे देवलोक में स्पर्श की परिचारणा अर्थात् उन देवों को देवियों के स्पर्शमात्र से कामतृष्णा की शान्ति हो जाती है और सुख का अनुभव होता है। पांचवें और छठे देवलोक में रूप की परिचारणा अर्थात् उन देवों को देवियों के सुसज्जित रूप को देख कर उन्हें तृप्ति हो जाती है। सातवें आठवें देवलोक में शब्द की परिचारणा अर्थात् देवियों के मधुर शब्द सुनने मात्र से उन देवों की कामवासना शांत हो जाती है और उन्हें विषय सुख के अनुभव का आनन्द मिलता है। नवें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक में मन की परिचारणा अर्थात् उन देवों को देवियों के चिन्तन मात्र से विषय सुख की तृप्ति हो जाती है।

नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमानों में किसी प्रकार की

परिचारणा नहीं होती है।

देवियों की उत्पत्ति दूसरे देवलोक तक ही होती है। जब ऊपर के देवलोकों के देवों को विषय सुख की इच्छा होती है तो आठवें देवलोक तक देवियां स्वयं उनके पास पहुंच जाती हैं। ऊपर ऊपर के देवलोकों में स्पर्श, रूप, शब्द तथा चिन्तन (मन) मात्र से तृप्ति होने पर भी उत्तरोत्तर सुख अधिक होता है। ऊपर ऊपर के देवलोकों में कामवासना मन्द (अल्प) होती है अर्थात् दूसरे देवलोक की अपेक्षा तीसरे में, तीसरे की अपेक्षा चौथे में, चौथे से पांचवें में इसी प्रकार उत्तरोत्तर कामवासना मन्द होती जाती है।

सुख की अल्प बहुत्व—सबसे थोड़ा सुख काया (शरीर) की परिचारणा वाले देवों को होता है। उससे अनन्तगुणा सुख स्पर्श की परिचारणा वाले देवों को होता है। उससे अनन्त गुणा सुख रूप की परिचारणा वाले देवों को होता है। उससे अनन्त गुणा सुख शब्द की परिचारणा वाले देवों को होता है। उससे अनन्त गुणा सुख मन की परिचारणा वाले देवों को होता है। उससे अनन्तगुणा सुख अपरिचारणा वाले देवों को होता है।

२० भोग स्थिति द्वार—अहो भगवान्! इन्द्रादिक देवों के भोग में कौन सी देवियां काम आती हैं? हे गौतम! जो अपरिगृहीता देवियां पहले देवलोक में रहती हैं, उनमें से एक पल्योपम की स्थिति से लेकर सात पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां पहले देवलोक के देवों के काम आती हैं। सात पल्योपम से

एक समय अधिक की स्थिति से लेकर दस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां तीसरे देवलोक के काम आती हैं। दस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर बीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां पांचवें देवलोक के काम में आती हैं। बीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर तीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियाँ सातवें देवलोक के काम आती हैं। तीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर चालीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां नवमें देवलोक के काम में आती हैं। चालीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पचास पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियाँ ग्यारहवें देवलोक के काम में आती हैं।

जो अपरिगृहीता देवियां दूसरे देवलोक में रहती हैं, उनमें से एक पल्योपम झाझेरे (कुछ अधिक) की स्थिति से लेकर नव पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां दूसरे देवलोक के काम में आती हैं। नव पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पन्द्रह पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां चौथे देवलोक के काम में आती हैं। पन्द्रह पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पचीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियाँ छठे देवलोक के काम में आती हैं। पचीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पैंतीस पल्योपम तक स्थिति वाली देवियां आठवें देवलोक के काम में आती हैं। पैंतीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पैंतालीस पल्योपम तक की

स्थिति वाली देवियां दसवें देवलोक के काम में आती हैं। पैंतालीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पचपन पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां बारहवें देवलोक के काम में आती हैं।

२१. अंगणाई (आंगन की मोटाई) द्वार—अहो भगवान्! देवलोकों की अंगणाई (आंगन की मोटाई) कितनी होती है? हे गौतम! पहले दूसरे देवलोक में २७०० योजन की अगणाई (आंगन की मोटाई) है और महल ५०० योजन के ऊंचे हैं। तीसरे चौथे देवलोक में २६०० योजन की अंगणाई है और महल ६०० योजन के ऊंचे हैं। पांचवें छठे देवलोक में २५०० योजन की अंगणाई है और महल ७०० योजन के ऊंचे हैं। सातवें आठवें देवलोक में २४०० योजन की अंगणाई है और महल ८०० योजन के ऊंचे हैं। नवमें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक में २३०० योजन की अंगणाई है और महल ९०० योजन के ऊंचे हैं। नवग्रैवेयक में २२०० योजन की अंगणाई है और महल १००० योजन के ऊंचे हैं। पांच अनुत्तर विमानों में २१०० योजन की अगणाई है और महल ११०० योजन के ऊंचे हैं।

२२. पुत्र पुत्री द्वार—अहो भगवान्! क्या देवों के पुत्र पुत्री होते हैं? हे गौतम! नहीं होते हैं। अहो भगवान्! क्या देव विषय सेवन करते हैं? हां, गौतम! करते हैं। अहो भगवान्! क्या उनके वीर्य के पुद्गल गिरते हैं? हां, गौतम! गिरते हैं। अहो भगवान्! तो फिर पुत्र पुत्री क्यों नहीं होते? हे गौतम! वे

चौथे में पुद्गल देवी के पांच इन्द्रियपणे परिणमते हैं।

२३. उपजन द्वार (उत्पत्ति द्वार)—अहो भगवान्! देव कैसे उत्पन्न होते हैं? हे गौतम! देव शय्या में उत्पन्न होते हैं। आठवें देवलोक तक एक समय में एक दो तीन, संख्यात असंख्यात तक जीव उत्पन्न हो सकते हैं। आठवें देवलोक से आगे एक दो तथा उत्कृष्ट संख्यात ही उत्पन्न हो सकते हैं। असंख्यात नहीं, क्योंकि आठवें देवलोक से आगे मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं और मनुष्य संख्यात ही हैं।

२४. श्वासोच्छ्वास द्वार—अहो भगवान्! ये चार जाति के देव कितने समय से श्वासोच्छ्वास लेते हैं? हे गौतम! असुर कुमार जाति के देव जघन्य सात थोव (स्तोक) से और उत्कृष्ट एक पक्ष भाभेरे से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। नागकुमार आदि नव निकाय के देव तथा वाणव्यन्तर जाति के देव जघन्य सात थोव (स्तोक) से और उत्कृष्ट प्रत्येक मुहूर्त (पृथक्त्व मुहूर्त)* से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। ज्योतिषी देव जघन्य उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) मुहूर्त से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। पहले देवलोक के देव जघन्य प्रत्येक (पृथक्त्व) मुहूर्त से और उत्कृष्ट दो पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। दूसरे देवलोक के देव जघन्य प्रत्येक (पृथक्त्व) मुहूर्त भाभेरे से और उत्कृष्ट दो पक्ष भाभेरे से। तीसरे देवलोक के देव जघन्य दो पक्ष से और उत्कृष्ट सात पक्ष से। चौथे देवलोक के देव जघन्य दो पक्ष भाभेरे से और उत्कृष्ट सात

---

* दो से लेकर नौ तक की संख्या को पृथक्त्व (प्रत्येक) कहते हैं।

पक्ष झाझेरे से। पांचवें देवलोक के देव जघन्य सात पक्ष से और उत्कृष्ट दस पक्ष से। छठे देवलोक के देव जघन्य दस पक्ष से और उत्कृष्ट चौदह पक्ष से। सातवें देवलोक के देव जघन्य चौदह पक्ष से और उत्कृष्ट १७ पक्ष से। आठवें देवलोक के देव जघन्य १७ पक्ष से और उत्कृष्ट १८ पक्ष से। नववें देवलोक के देव जघन्य १८ पक्ष से और उत्कृष्ट १९ पक्ष से। दसवें देवलोक के देव जघन्य १९ पक्ष से और उत्कृष्ट २० पक्ष से। ग्यारहवें देवलोक के देव जघन्य २० पक्ष से और उत्कृष्ट २१ पक्ष से। बारहवें देवलोक के देव जघन्य २१ पक्ष से और उत्कृष्ट २२ पक्ष से। पहले ग्रैवेयक के देव जघन्य २२ पक्ष से और उत्कृष्ट २३ पक्ष से। दूसरे ग्रैवेयक के देव जघन्य २३ पक्ष से और उत्कृष्ट २४ पक्ष से। इसी तरह एक एक पक्ष बढ़ाते हुए नववें ग्रैवेयक के देव जघन्य ३० पक्ष से और उत्कृष्ट ३१ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। चार अनुत्तर विमान के देव जघन्य ३१ पक्ष से और उत्कृष्ट ३३ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। सर्वार्थसिद्ध के देव जघन्य उत्कृष्ट ३३ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं+।

+ जैसे जैसे देवों की स्थिति बढ़ती जाती है उसी प्रकार उच्छ्वास का कालमान भी बढ़ता जाता है। जैसे दस हजार वर्ष की स्थिति वाले देवों का एक उच्छ्वास सात स्तोक (थोव) परिमाण होता है। एक पल्योपम की स्थिति वाले देवों का एक उच्छ्वास प्रत्येक मुहूर्त का होता है। सागरोपम की स्थिति वाले देवों में जितने सागरोपम की स्थिति होती है उतने ही पक्ष (पखवाड़ा) का उच्छ्वास होता है।

२५. आहार द्वार— दस हजार वर्ष की स्थिति वाले देव एक दिन बीच में छोड़ कर आहार करते हैं। पल्योपम की स्थिति वाले देव प्रत्येक दिन (दिन पृथक्त्व अर्थात् दो दिन से लेकर नौ दिन तक के अन्तर) से आहार करते हैं। सागरोपम की स्थिति वाले देव जितने सागरोपम की स्थिति होती है उतने हजार वर्ष के बाद आहार करते हैं।

२६. अवगाहना द्वार— देवों की अवगाहना दो तरह की होती है— भव धारणीय और उत्तर वैक्रिय। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक में भवधारणीय अवगाहना जघन्य अङ्गुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट सात हाथ की होती है। तीसरे और चौथे देवलोक में छह हाथ, पांचवें और छठे में पांच हाथ, सातवें और आठवें में चार हाथ, नवमें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक में तीन हाथ की, नवग्रैवेयक में दो हाथ और पांच अनुत्तर विमान में एक हाथ की अवगाहना होती है। उत्तर वैक्रिय अवगाहना सभी देवों में बारहवें देवलोक तक जघन्य अङ्गुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन की होती है।

२७. स्थिति द्वार— अहो भगवान्! इन चार जाति के देवों की क्या स्थिति है? हे गौतम! भवनपति देवों के बीस इन्द्र हैं। इनमें से चमरेन्द्र जी की राजधानी चमरचञ्चा के देवों की स्थिति जघन्य १० हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक सागरोपम की है। इनकी देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट ३॥ साढे तीन पल्योपम की है। बलीन्द्र जी की बलचञ्चा राजधानी के देवों

पक्ष झाझेरे से। पांचवें देवलोक के देव जघन्य सात पक्ष से और उत्कृष्ट दस पक्ष से। छठे देवलोक के देव जघन्य दस पक्ष से और उत्कृष्ट चौदह पक्ष से। सातवें देवलोक के देव जघन्य चौदह पक्ष से और उत्कृष्ट १७ पक्ष से। आठवें देवलोक के देव जघन्य १७ पक्ष से और उत्कृष्ट १८ पक्ष से। नवमें देवलोक के देव जघन्य १८ पक्ष से और उत्कृष्ट १६ पक्ष से। दसवें देवलोक के देव जघन्य १६ पक्ष से और उत्कृष्ट २० पक्ष से। ग्यारहवें देवलोक के देव जघन्य २० पक्ष से और उत्कृष्ट २१ पक्ष से। बारहवें देवलोक के देव जघन्य २१ पक्ष से और उत्कृष्ट २२ पक्ष से। पहले ग्रैवेयक के देव जघन्य २२ पक्ष से और उत्कृष्ट २३ पक्ष से। दूसरे ग्रैवेयक के देव जघन्य २३ पक्ष से और उत्कृष्ट २४ पक्ष से। इसी तरह एक एक पक्ष बढ़ाते हुए नवमें ग्रैवेयक के देव जघन्य ३० पक्ष से और उत्कृष्ट ३१ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। चार अनुत्तर विमान के देव जघन्य ३१ पक्ष से और उत्कृष्ट ३३ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। सर्वार्थसिद्ध के देव जघन्य उत्कृष्ट ३३ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं+।

+ जैसे जैसे देवों की स्थिति बढ़ती जाती है, उसी प्रकार उच्छ्वास का कालमान भी बढ़ता जाता है। जैसे दस हजार वर्ष की स्थिति वाले देवों का एक उच्छ्वास सात स्तोक (थोव) परिमाण होता है। एक पल्योपम की स्थिति वाले देवों का एक उच्छ्वास प्रत्येक मुहूर्त का होता है। सागरोपम की स्थिति वाले देवों में जितने सागरोपम की स्थिति होती है, उतने ही पक्ष (पखवाड़ा) का उच्छ्वास होता है।

२५. आहार द्वार— दस हजार वर्ष की स्थिति वाले देव एक दिन बीच में छोड़ कर आहार करते हैं। पल्योपम की स्थिति वाले देव प्रत्येक दिन (दिन पृथक्त्व अर्थात् दो दिन से लेकर नौ दिन तक के अन्तर) से आहार करते हैं। सागरोपम की स्थिति वाले देव जितने सागरोपम की स्थिति होती है उतने हजार वर्ष के बाद आहार करते हैं।

२६. अवगाहना द्वार— देवों की अवगाहना दो तरह की होती है— भव धारणीय और उत्तर वैक्रिय। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक में भवधारणीय अवगाहना जघन्य अङ्गुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट सात हाथ की होती है। तीसरे और चौथे देवलोक में छह हाथ, पांचवें और छठे में पांच हाथ, सातवें और आठवें में चार हाथ, नवमें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक में तीन हाथ की, नवग्रैवेयक में दो हाथ और पांच अनुत्तर विमान में एक हाथ की अवगाहना होती है। उत्तर वैक्रिय अवगाहना सभी देवों में बारहवें देवलोक तक जघन्य अङ्गुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन की होती है।

२७. स्थिति द्वार— अहो भगवान् ! इन चार जाति के देवों की क्या स्थिति है ? हे गौतम ! भवनपति देवों के बीस इन्द्र हैं। उनमें से चमरेन्द्र जी की राजधानी चमरचञ्चा के देवों की स्थिति जघन्य १० हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक सागरोपम की है। इनकी देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट ३॥ साढे तीन पल्योपमकी है। बलीन्द्र जी की बलचञ्चा राजधानी के देवों

की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक सागरोपम झाझेरी है। इनकी देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट ४॥ पल्योपम की है। दक्षिण दिशा के नवनिकाय के देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट डेढ पल्योपम की है। इनकी देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट पौण पल्योपम की है। उत्तर दिशा के नवनिकाय के देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट देश ऊणी दो पल्योपम की है। इनकी देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट देश ऊणी एक पल्योपम की है।

वाणव्यन्तर देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक पल्योपम की है। इनकी देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट आधा पल्योपम की है।

ज्योतिषी देवों के पांच भेद हैं— चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा। चन्द्र वासी देव की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम की, उत्कृष्ट एक पल्योपम और एक लाख वर्ष की है। इनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम की, उत्कृष्ट आधा पल्योपम और पचास हजार वर्ष की है।

सूर्य वासी देव की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम की, उत्कृष्ट एक पल्योपम और एक हजार वर्ष की है। इनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम की, उत्कृष्ट आधा पल्योपम और ५०० वर्ष की है।

ग्रह वासी देव की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम की, उत्कृष्ट

एक पल्योपम की है। इनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम की, उत्कृष्ट आधा पल्योपम की है।

नक्षत्र वासी देव की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम की, उत्कृष्ट आधा पल्योपम की है। इनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम की, उत्कृष्ट पाव पल्योपम झाझेरी है।

तारावासी देव की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग, उत्कृष्ट पाव पल्योपम की है। इनकी देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग, उत्कृष्ट पल्योपम के आठवें भाग झाझेरी है।

वैमानिक देवों की स्थिति—पहले देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम, उत्कृष्ट दो सागरोपम की है। देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम, उत्कृष्ट पचास पल्योपम की है। परिगृहीता देवियों की जघन्य पल्योपम, उत्कृष्ट सात पल्योपम। अपरिगृहीता देवियों की जघन्य एक पल्योपम, उत्कृष्ट पचास पल्योपम की है।

दूसरे देवलोक में देवों की जघन्य पल्योपम झाझेरी (कुछ अधिक) उत्कृष्ट दो सागरोपम झाझेरी है। परिगृहीता देवियों की जघन्य पल्योपम झाझेरी, उत्कृष्ट नौ पल्योपम। अपरिगृहीता देवियों की जघन्य पल्योपम झाझेरी, उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है।

तीसरे देवलोक में जघन्य दो सागरोपम, उत्कृष्ट सात सागरोपम। चौथे में जघन्य दो सागरोपम झाझेरी, उत्कृष्ट सात

सागरोपम जाजेरी। पांचवें में जघन्य सात सागरोपम, उत्कृष्ट दस सागरोपम। छठे में जघन्य दस सागरोपम, उत्कृष्ट चौदह सागरोपम। सातवें में जघन्य चौदह सागरोपम, उत्कृष्ट सतरह सागरोपम। आठवें में जघन्य सतरह सागरोपम, उत्कृष्ट अठारह सागरोपम। नवमें में जघन्य अठारह सागरोपम, उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम। दसवें में जघन्य उन्नीस सागरोपम, उत्कृष्ट बीस सागरोपम। ग्यारवें में जघन्य बीस सागरोपम, उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम। बारहवें में जघन्य इक्कीस सागरोपम, उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की है। पहले ग्रैवेयक में जघन्य बाईस सागरोपम, उत्कृष्ट तेईस सागरोपम की है। इसी तरह एक एक ग्रैवेयक में एक एक सागरोपम बढाते जाना चाहिए। नवमें ग्रैवेयक में जघन्य तीस सागरोपम, उत्कृष्ट इकतीस सागरोपम की है। चार अनुत्तर विमान में जघन्य इकतीस सागरोपम, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। सर्वार्थसिद्ध विमान में जघन्य उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।

२८. प्रतर द्वार— अहो भगवान्! इन देवलोकों में कितने प्रतर हैं? हे गौतम! पहले दूसरे देवलोक में १३ प्रतर हैं। तीसरे चौथे में १२ प्रतर हैं। पांचवें में ६ प्रतर हैं। छठे में पांच प्रतर हैं। सातवें में चार प्रतर हैं। आठवें में चार प्रतर हैं। नवमें दसवें में चार प्रतर हैं। ग्यारहवें बारहवें में चार प्रतर हैं। नवग्रैवेयक में नौ प्रतर हैं। पांच अनुत्तर विमानों में पांच प्रतर हैं। इस प्रकार कुल ६२ प्रतर हैं।

२६. पूंजी द्वार— अहो भगवान् ! कौन देव कितने समय में अपनी पूंजी (पुण्य) को खर्च करता है (क्षय करता है) ? हे गौतम ! वाणव्यन्तर देव जितने पुण्य को १०० वर्ष में खुटाते हैं (खपाते हैं) उतने पुण्य को नवनिकाय के देव २०० वर्षों में खुटाते हैं। असुरकुमार जाति के देव उतने पुण्य को ३०० वर्षों में खुटाते हैं। ग्रह नक्षत्र तारा उतने पुण्य को ४०० वर्षों में खुटाते हैं। चन्द्रमा सूर्य ५०० वर्षों में खुटाते हैं। पहले दूसरे देवलोक के देव एक हजार वर्ष में खुटाते हैं। तीसरे चौथे के देव दो हजार वर्ष में, पांचवें छठे के तीन हजार वर्ष में, सातवें आठवें के चार हजार वर्ष में, नवर्वे दसवें ग्यारहवें बारहवें के पांच हजार वर्ष में खुटाते हैं। नवग्रैवेयक की पहली त्रिक के देव एक लाख वर्ष में, दूसरी त्रिक के देव दो लाख वर्ष में, तीसरी त्रिक के देव तीन लाख वर्ष में खुटाते हैं। चार अनुत्तर विमान के देव चार लाख वर्ष में खुटाते हैं और सर्वार्थसिद्ध विमान के देव पांच लाख वर्ष में खुटाते हैं।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

'भजन'

"तेरह काठिया-का भजन"

रतन चिन्ता मणि जेहवोजी जी, पाम्याछे नर अवतारो जी।
दूर तजो जी तेरे काठिया जी ॥ टेर ॥

पहलो छे आलस काठियो जी, किम करे धर्म न ध्यान जी।
व्याख्यान वाणी किम सुन सके जी, आलस पशु रे समान जी॥
आलसी किम पढ़े ज्ञान में, किम करे विनय भक्ति जी।
साधु श्रावक री क्रिया किम कर सके जी, आलस से मुक्ति रहे दूरोजी॥

दूजो छे मोह कर्म काठियो जी, जीव ने करे अन्धाधुन्धो जी।
भलो रे बूझि सूझे नहीं जी, मोह गमावे सुध बुध जी॥
मोह सु इन्द्र पर वश थया जी, रहा रहा देवियां आधीन जी।
सेठ सेन्यापति राजवी जी, पड़्या सब मोहरे वश जी॥
सोमा रानी रे मोह कारणे जी, शिशुपाले कियो अन्याय जी।
वालि छे चारसो निन्यानवे रानियांजी,चालो सूत्र विपाकरें मायजी॥
मोहसु घर धंधो कर रहा जी, कदीय न सुनो व्याख्यान जी।
आठ पहर पचता रहो जो, लागी घर धनि धीन जी॥टेर॥

तीसरो अवनीत काठियो जी, अवनीत जहर समान जी।
वचन बोले अण खावणा जी, किम देवे ज्ञानी गुरु सीख जी॥
मनुष्य त्रियंच ने देवता जी, अवनीत दुःखियों घणो थाय जी।
भूख प्यास मोगे घणी जी, चाली सूत्र दशवीं कालक रे मांय जी॥
चौथो छे परमाद काठियो जी, किम होवे धर्म में सूर जी।
मोल चाल सीखे घणा जी, जावे परमाद में भूल जी॥
पांचवां कषाय कर्मो काठियो जी, करे घणा कजियाने राड़ जी।
जप तप संयम खोयने जी, छिन में ही कर देवे छार जी॥
छठों छे रोगी कर्म काठियो जी, रोगी री काया नहीं वस जी।
धर्म ध्यान किम कर सके जी, किम काढ़े देही में से कस जी॥
सातवों अपयश काठियो जी, नहीं दीजे किम ने ही दोष जी।
भली री करता भूंडो हुवे जी, जो ओ कर्मों तनो देष जो॥
मान पूजा कर्म काठियो जी झाली रासी सेंठी मत जी।
कुल तनि रूढ़ि छोड़े नहीं जी, रुलसी प्राणी चारों गत जी॥
सूंस वरत करतो डरे जी, नहीं आवे साधा रे नजदीक जी।
नवों छे भय कर्म काठियो जी, किम देवे ज्ञानि गुरु सीख जी॥
साधु जी समझावे भांति भांति सूं जी, पिण नहीं लागे लवलेश जी।
मांहली मिजी भिजे नहीं जी, रुलसी प्राणी चारों ही गत जी॥
उप सम चंचल मोयलो जी, चित नहीं रहे एक ठांव जी।
मनरो वो झोला खाय रह्यो जी, जो जो कर्मों तणी झोंक जी॥
ग्यारह्वो निन्द्रा कर्म काठियो जी, किम करु मनझाय ने ध्यान जी।
सतगुरु देवे धर्म देशना जी, सुनता ही आंवे घुततो जांयजी॥

तेरहवों समदानी काठियो जी, कुटुम्ब तणो जंजाल जी।
धर्म ध्यान किम कर सके जी, कुटुम्बी लागा छे लार जी॥
तेरहीं काठिया परहरो जी, धर्म करो निर्दोष जी,
भगता है गुरु देवना जी, भलो भादवड़े रो मास जी॥

चन्दना की पुकार

चँदना जोवे प्रभु बाट, माला फेरे दिन रात,
प्रभु आवो हमारे अंगना— २॥ टेर॥
सति सुख माला चँदन माला, मुख में नवकार फेरती माला।
चँदन बाला तेला तप करके, सति मन हरके॥ प्रभु॥ १॥
परिणाम शुद्ध है देहली पे बैठी बाकुलों के बाकलों सुपड़े में पेठी,
आशा पुरो कृपानाथ याद करूं दिन रात॥ प्रभु॥ २॥
प्रभु को देख ये हर्ष मनावे, नेणों में नीर नहीं प्रभु फिर जावे
रुदन मचावे प्रभु पीछा फिरके गया सति तारके॥ प्रभु॥ ३॥
इन्द्रोंने रत्नों की वृष्टि बरसाई, देव दुन्दुभि की आवाज आई
वृष्टि बरसाई धन धन सति आज सारे आतम काज॥ प्रभु॥ ४॥
विक्रम संवत् २००५ किया चौमासो धुलीया शहर में
चंचल कहे कर जोड संव, सति, सिर मोड़॥ प्रभु॥ ५॥

अठारह पाप का स्तवन

हांरे म्हारा जीयड़ा चिकणा कर्म तूं काई बांधे, डरे न मन के मांय
हांरे म्हारा प्राणियां चिकना कर्म तु कांई बांधे
॥ टेर ॥ हांरे म्हारा जीवड़ा

प्राण लुटिया पर जीवांरा, हांरे म्हारा जीवड़ा झूठ बोलिया
अणगिनती का
हांरे म्हारा जीवड़ा चोरी में चित रचो निको रे प्राणीयां चि०
॥ १ ॥ हांरे म्हारा जीवड़ा

रमणी रंग बहु निरख्या, हांरे म्हारा जीवड़ा विषय विकार में मंन
हरख्या, हांरे म्हारा जीवड़ा परिग्रह का पाप नहीं परख्या
प्राणियां चि० ॥ २ ॥ हांरे म्हारा जीवड़ा,

क्रोध करी ने घती तपीयो हांरे म्हारा जीवड़ा मानकरी ने भव-
भव भमीगो हांरे म्हारा जीवड़ा ज्ञानी से नही रह्यो छिपयोरे
प्राणियां चि० ॥ ३ ॥ हांरे म्हारा जीवड़ा

बोले जिसो चाले नहीं हांरे म्हारा जीवड़ा इण ने दगाबाजी कही
हांरे म्हारा जीवड़ा लोभ को थोभ नहीं रे
प्राणियां चि० ॥ ४ ॥ हांरे म्हारा जीवड़ा

राग को नामज है प्रीति हारे म्हारा जीवड़ा इनकी कहूँ थोड़ी रीति हारे म्हारा जीवड़ा केई जीवा में पीती रे प्राणियां चि० ॥ ५ ॥ हारे म्हारा जीवड़ा

पद्मोत्तर तेलो ठायो हारे म्हारा जीवड़ा प्रीति से देवता आयो हारे म्हारा जीवड़ा द्रोपदी ने हर लायो रे प्राणियां चि० ॥ ६ ॥ हारे म्हारा जीवड़ा

प्रीति से इन्द्र आया हारे म्हारा जीवड़ा कोणक का कीया मन भाया हारे म्हारा जीवड़ा हार हाथी हाथ नहीं आया रे प्राणियां चि० ॥ ७ ॥ हारे म्हारा जीवड़ा,

पक्षापात में मति फंसो हारे म्हारा जीवड़ा ज्ञानी गुरां भाख्यो ऐसो हारे म्हारा जीवड़ा पाप करो न कोई हंसो रे प्राणियां चि० ॥ ८ ॥ हारे म्हार जीवड़ा

प्रीति अनीति को मति करो हारे म्हारा जीवड़ा नीति की प्रीति से मति डरो, हारे म्हारा जीवड़ा राग द्वेष परि हरो रे प्राणियां चि० ॥ ९ ॥ हारे म्हारा जीवड़ा

राग द्वेष दोइ बीज हारे म्हारा जीवड़ा इण माहि न् मत रीझ हारे म्हारा जीवड़ा कर्मा को पोष दीजो रे प्राणियां चि० ॥ १० ॥ हारे म्हारा जीवड़ा

कलेश में रातो रेवे हारे म्हारा जीवड़ा घणा जीवा ने दुख देवे हारे म्हारा जीवड़ा प्रेम से पापने सेवे रे प्राणियां चि० ॥ ११ ॥ हारे म्हारा जीवड़ा

अभियाख्यान माख्यो ऐसो हांरे म्हारा जीवड़ा आल चढ़ावे मन जैसो हांरे म्हारा जीवड़ा भूगतोला वैसो रे प्राणियाँ चि० ॥ १२ ॥ हांरे म्हारा जीवड़ा

चाड़ी चुगली में बहु राजी हांरे म्हारा जीवड़ा डरे नहीं मन में प्राणी हांरे म्हारा जीवड़ा आत्मा जरा नहीं लाजी रे प्राणियां चि० ॥ १३ ॥ हांरे म्हारा जीवड़ा

यश कीर्ती अपनी चावे हांरे म्हारा जीवड़ा दूजा का अवगुन गावे हांरे म्हारा जीवड़ा परपरिवाद मन भावे रे प्राणियां चि० ॥ १४ ॥ हांरे म्हारा जीवड़ा

धर्म काम मन नहीं भावे हांरे म्हारा जीवड़ा अधर्म काम में हर्षावे हांरे म्हारा जीवड़ा रति अरति ईम थावे रे प्राणियां चि० । १५ ॥ हांरे म्हारा जीवड़ा

माल ठगने चीत चोखा हांरे म्हारा जीवड़ा माया सहित बोले मृषा हांरे म्हारा जीवड़ा कितनीक वेऊं थने सिक्षा हांरे प्राणियां चि० ॥ १६ ॥ हांरे म्हारा जीवड़ा

मिथ्या दर्शन सब खोटो हांरे म्हारा जीवड़ा सर्व पाप में यो मोटो हांरे म्हारा जीवड़ा सेव्यां से पड़सी टोटो रे प्राणियां चि० ॥ १७ ॥ हांरे म्हारा जीवड़ा

पाप अठारा इन पर गाया हांरे म्हारा जीवड़ा करो मति मन का चाया हांरे म्हारा जीवड़ा ज्ञानी गुरु फरमाया रे प्राणियां चि० ॥ १८ ॥ हांरे म्हारा जीवड़ा

१६	१५	ग्रोर	ग्रौर
२०	१५	अवगाहन	अवगाहना
२२	३	ग्रोर	ग्रौर
२२	१३	सागर	सागर के
२८	२	अमिशिख	अग्निशिख
२८	२	अमि	अग्नि
२८	३	अमिमाणव	अग्निमाणव
२८	६	देवों को	देवों के
२६	१८	कणिका	कर्णिका
३०	१३	दोनों का	दोनों का वर्ण
३१	१७	राजानीक	गजानीक
३२	१०	समरमगीय	समरमणीय
३२	१०	(गहृत्य)	(महल)
३२	१७	निर्प्यका	निर्पका
३२	१६	उद्योतकारी	उद्योतकारी
३२	२०	अमिरूपा	अभिरूपा
३३	२	सत्रीक	सश्रीक
३४	२	हसपके	इसके
३६	३	क्रिय	क्रिया
३६	६	है	हैं
३७	१०	परिपद् के	परिपद् में
३७	११	मात्र	मात्र

३७	१८	वलीन्द्र जी	वलीन्द्रजी
३७	२०	सकती हैं।	सकती है।
३८	३	ब्राह्म	बाह्य
३८	३	देव	देव हैं।
३८	५	ब्राह्म	बाह्य
३८	११	ब्राह्म	बाह्य
३९	८	कहते है	कहते हैं
३९	१७	एक	१
३९	१७	पाणपत्र	पाणपत्रे
३९	२२	भारत	भरत
४०	१	७२	३७॥
४०	४	आदि में	आदि से
४०	११	वृक्ष	वृक्ष का
४०	१३	टिम्बस	टिम्बरु
४३	६	मेरू	मेरु
४४	६	वल्ली	विल्ली
५१	१	आलोक	अलोक
५२	७	पुष्करा वर्त	पुष्करावर्त
५५	१२	अरुण प्रम	अरुणप्रभ
५६	७	पद्घा	पद्चा
५६	१०	न नौ	नौ नौ
५६	१५	फलशो	फलशों

५८	३	भगावन्	भगवान्
५८	४	सावधी	साध्वी
५९	९	बैठा	बैठा हुआ
६०	६	परधि	परिधि
६०	७	परधि	परिधि
६१	१८	पवत	पर्वत
६५	२०	मेरू	मेरु
७५	१४	की	कि
७८	३	मेरू	मेरु
७८	६	मेरू	मेरु
८०	९	नवयां	नवमां
८१	१०	देवलोक के	देवलोक
८२	१	त्र्यर्स	त्र्यस्र
८२	१	चतुरर्स	चतुरस्र
८९	३	देव लोक	देवलोक
९३	५	मनोग्य	मनोज्ञ